राजस्थान के कहानीकार (हिन्दी)

दूसरा भाग

'राजस्थान साहित्य-परिचय मालान्तर्गत

•

प्रकाशक राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

•

मुद्रक : श्री महावीर प्रिन्टिंग प्रेस, हाथीपोल बाहर, उदयपुर

•

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 1977 ई०

•

मूल्य : बारह रुपये

RAJASTHAN KE KAHANIKAR (Hindi) Part II

Editor : Dr. Alamshah Khan

राजस्थान के कहानीकार (हिन्दी)

दूसरा भाग

•

सम्पादक—डॉ० आलमशाह खान

•

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' / आलमशाह खान / हेतु भारद्वाज / रामदेव आचार्य / कमर मेवाड़ी / राजानन्द / योगेन्द्र किसलय / शशिकांत गोस्वामी / राम जैसवाल / ईश्वरचन्दर / हबीब कैफी / शचीन्द्र उपाध्याय / स्वयंप्रकाश / मणि मधुकर

□□

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

प्रकाशकीय

सन् १९६१ में राजस्थान के ३६ कहानीकारों की कहानियों का संकलन अकादमी ने प्रकाशित किया था।

तब से अबतक जिन्दगी में कितने बदलाव-ठहराव आए है, मानवीय मूल्यों में कैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, यह सब कुछ साहित्य-निधि मे लिपिबद्ध है।

इस दौरान के १४ कहानीकारों की कहानियां इस संकलन मे प्रस्तुत हैं। मुझे विश्वास है कि ये कहानियां जीवन के विविध आयामों का परिचय तो देंगी ही साथ ही कहानी की अधुनातन स्थिति का भी बोध करायेंगी।

उदयपुर
दिनांक 1977 ई०

राजेन्द्र शर्मा
निदेशक

औपचारिकता के बहाने कहानी पर बातचीत : एक अधूरा सिलसिला

राजस्थान के कहानीकारो की एकदम अलग पहचान बनाने की गरज से यह संकलन सामने नही लाया जा रहा बल्कि महज यह जाँचने परखने के लिए कि एक घर-परिवार के लोग हिन्दी-कहानी के विराट व्यक्तित्व के अंकन मे किस रेख-रंग के आलोक को उजागर किया चाहते है ? क्या उनके संवेदन-सवेग, शिल्प-संकेत और वैचारिक ऊर्जा के अनुभव-स्रोत वे ही है जो समूचे साहित्य जगत में आज मूर्त हो रहे हैं या फिर वे किसी दूसरी ही जमीन को काट रहे हैं ? वस्तुत. समान राष्ट्रीय फलक पर जीने वाले साहित्यकार की सवेदना को मूर्त करने वाले रग-रेख तो भिन्न हो सकते हैं किन्तु उनका यथार्थ, यथार्थ से पाया गया अर्थ-बोध, अर्थ-बोध से बने विचार विचार से बने निर्णय, निर्णय से जनमी मानसिकता, और मानसिकता के आग्रह से उपजी क्रान्तिधर्मिता भिन्न नहीं हो सकती। आज भारत के विभिन्न अंचलों मे बसने वाले जन के दु.ख-सुख के धारे एक हैं—व्यवस्था की मार जितनी राजस्थानी को लगती है वैसा ही अनुभव उससे तमिलियन को होता है। व्यवस्थागत दुर्नीति का दंश जितना केरलवासी को सालता है उतना ही कश्मीरी को भी। इसी प्रकार खुशहाली की लहरीली झकार आज देश के एक छोर से दूसरे छोर तक बसे लोगो को एक ही राग में सराबोर करती है।

आज से कोई पन्द्रह बरस पहले, सन् १९६१ में, 'राजस्थान के कहानीकार' शीर्षक से डॉ० रामचरण 'महेन्द्र' एवं यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के सम्पादन मे एक कहानी संग्रह अकादमी ने प्रकाशित किया था। इसलिए देखना यह भी है कि आज इस अंचल का कहानीकार पहले जिस जमीन पर खडा था उससे कितना कुछ आगे बढा है ? कहीं उसमे ठहराव या कि दोहराव तो नही आ गया ? यदि ठहराव नही, उसकी गति मे नैरन्तर्य है तो; हम जानना चाहेगे कि उसकी गति किस ओर है ? उसकी मंजिल कहाँ और कैसी है ? उस मंजिल के रास्ते किधर को हैं ? और उस मंजिल को पाकर वह कैसे मानस और किस माहौल को बनाया चाहता है ? आखिर तो कहानी अब मात्र कहानी नही रही वह जीवन और जीवन

की ज्वलंत समस्याओं में पैठकर जीवन्त बन गई है। उसकी जिजीविषा की यह दरकार है कि वह उससे उसके होने और बने रहने की आवश्यकता—उसकी सार्थकता के लिए सफाई चाहे।

इतिहास की ऊहापोह ने इस देश को इतने झटके दिये हैं कि उनकी झनझनाहट न केवल उसकी रीढ़ में सनसनाती रही है अपितु उसके मानस को भी दीर्घकाल तक सुन्न किये रही है। यही कारण रहा कि आरंभिक हिन्दी-कहानी चमत्कार की चुहल और मनोरंजन साधक वैतालिक मुद्राओं में एक भुलावे (Diversion) का काम करती रही—इतिहास के गम को गलत करने के हल्के नुस्खे के रूप में इस्तेमाल होती रही। जब यह सनसनाहट कम हुई तो लगा कि कहानी हमें बहलाती-बहलाती बहकाने लगी है तभी उसकी भूमिका को बदल दिया गया। अब उसने व्यष्टि-समष्टि को सुधारने-सवारने, उसे नैतिक और आदर्श बनाने का बीड़ा उठाया। आदमी को खूब से खूबतर बनाते-बनाते जब कहानी मात्र कहानी बनकर आचार-संहिता के नियम दुहराने लगी तो फिर अनुभव हुआ कि इससे तो हम निरे भले और भोले बनकर रह गये हैं। जड़ व्यवस्था के विरुद्ध एक लड़ाई लड़कर भी पराजय और पिछड़ापन ही हमारे पल्ले पड़ा है; तो कहानी को अब गम्भीर सामाजिकता से जोड़ा गया। इस क्रम में उसे ठंडे आदर्शों के अवगुण्ठन, थोथे सदुआचरण की घेराबन्दी और मृत-मूल्य अवधारणा से अलग करके यथार्थ की खुरदरी और खरी जमीन पर खड़ा किया गया। अपने युग के यथार्थ और सत्य से जुड़कर कहानी किन्हीं दायित्वों से जा मिली। अब न केवल बनाने-जगाने का काम उसके जिम्मे आया अपितु एक लम्बी और कठिन लड़ाई लड़ने के लिये मानसिकता या कि हौसले को साधने-संजोने का दायित्व भी उस पर आयद हुआ। यह लड़ाई उन मूर्त-अमूर्त शक्तियों के खिलाफ लड़ी जा रही है जिसने इस देश की चेतना को कुन्द करके अबूझ आर्थिक हथकण्डों के तहत छलने की साजिश कर रखी है—यथास्थिति को बनाये रखने में जिसका हित है और जो जन विक्षोभ को सांस्कृतिक आदर्श और मानवतावादी भुलावे देकर निरंतर ठगती चली जा रही है।

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा में राजस्थान का कहानीकार सदैव क़दम से कदम मिला कर चला है और उसने राग-रंग, उपदेश-सिखावन और संगीन साफ-बयानी से लेकर लड़ाकू तेवर तक की कहानियाँ लिखी हैं—ऐसे कहानीकारों की परम्परा गुलेरी से लेकर मोहनसिंह सेंगर, डॉ० रांगेय राघव से लेकर यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' और फिर आगे मणि मधुकर तक चली आई है— आगे चल रही है।

कहानीकार के नाम पर क़िस्सा-गो और कहानी के भेस में किस्सों की

दरकार आज किसे है ? आजादी के बाद बन आया चौफेर का उत्पीड़न-उच्छेदन इस देश को एक यातना-शिविर के रूप मे बदलता हुआ कैसे-कैसे दर्दीले दौर से गुजारता चला गया—यह किसी से छिपा नही। परायों मे जूझते-जूझते हम जीत गये पर अपनो से निबटते-निबटते तो देश टूटने के कगार पर जा ठहरा। इस देश को जुए की बिसात समझ कर देशी-विदेशो थैलीशाहो ने न केवल आर्थिक-राजनैतिक मोर्चों पर ठगैत पासे फेंके अपितु सांस्कृतिक आसनों और धर्म की पेढ़ियो पर भी ऐसे एजेंट बैठा दिये हैं जो दर्शन और नीति की माला जपते हुए इहलोक और परलोक का जंजाल फैलाकर ऐसी बारीक मार करते रहे हैं जिससे इस देश का मानस लहू-लोहान हो गया। आजादी के दो युगों के बीतते न बीतते यह नौबत आ गई कि पुरानी पीढी तो भौंचक रह गई और बीच की पीढी भ्रष्ट होकर नई पीढी को भ्रम, दिशाहीनता और अंधा भविष्य देकर चुक गई। इस विरासत को झेलता हुआ आज का आदमी आस्थाहीन होकर भटकने लगा। वह और उसकी संतति अपने खेतो-खलिहानो, ऑफिस-दुकानो, कॉलिज-कारखानो, रेलो-मकानो,पुलो-बाधो को जलाती-ढाहती घर फूंक तमाशा देखने मे उलझ गई। उसके विपन्नता-कारी विक्षोभ, निरीहता एव अकर्मण्यता को सन् साठ के बाद की कहानी ने सार्थक स्वर दिया। यथार्थ के परिप्रेक्ष्य मे इतिहास की प्रक्रिया के आग्रह और वैज्ञानिक समझ के साथ अब कथा-कर्मी आगे आये। यहीं कहानी ने सवालिया तेवर अख्तियार किये और युग से सीधे साक्षात्कार में उसने अपनी नियति को पहचाना।

वस्तुत. साहित्यकार की मुद्रा सदैव प्रश्नकर्ता की मुद्रा रही है। वह अपने युग और उसे संचालित करने वाली व्यवस्था—शक्ति से सवाल करता रहा है। इस क्रम मे सीता भी सवाल थी और राधा भी, शकुन्तला भी और धनिया भी—सूबेदारनी भी और गदल भी। सीता जहा रावण के लिए प्रश्न है वहीं आगे वह राम के सामने भी एक सवाल के रूप मे ही उपस्थित है।

व्यवस्था और विधायिनी—सत्ता, शासक या सत्ताधारी के जब दस मुंह और बीस हाथ निकल आयें तब क्या वह दो दुर्बल हाथो को अपनी मुट्ठी में बाध ले और अपने दस मुखों की गर्जना मे एक कमजोर आवाज को अनसुना कर दे ? सीता इसी रूप मे रावण के सामने सवाल है। राम जो उद्धारक है सीता का उद्धार करके उसे फिर दूसरी व्यवस्था और जड आचार-संहिता के तहत निर्वासित कर दे—क्या उन्हे यह अधिकार है ? सीता फिर एक सवाल है, राम के सामने। सीता समर्थ थो इसलिए धरती की कोख मे समाकर आने वाले सारे संकटो से मुक्त हो गई। पर आज की सीता और उसकी समूची संतति मे,

इतनी सामर्थ्य कहा ? और सामर्थ्य हो तब भी वह धरती में समाना नही चाहती है– वह धरती पर जीना चाहती है। इतिहास की लम्बी परपरा ने उसे जीने के लिये लडना सिखा दिया है। और आज उसकी ज़िद है कि वह जियेगी एक बराबरी का जीवन और जीने के लिए शर्तें रखने वाली ताकतों से वह लडेगी– जीत में जाकर रुकने वाली अनथक लडाई। अनियंता आदमी का यही जूझारू रूप आज कहानी मे अभिव्यक्त हो रहा है।

सवाल यह है कि उसकी लड़ाई किससे है ? क्यों है ? किसके लिए है ? ये सवालात बेमानी है। क्योंकि जिन लोगो ने इन सवालात को उछाला है वे इसका उत्तर भली भांति समझते हैं। महज उन्होने सवालो के तुक्के इस गरज से फेंके है कि साहित्यकार एक निरर्थक बहस में उलझ जाय और वैसा कुछ न कहे–रचे जिससे उस व्यवस्था-विधान को ठेस पहुँचे जिससे उनके निहित स्वार्थ बँधे हैं। नव जागरण, सांस्कृतिक-धरोहर एवं सौंदर्य-बोध के नाम पर पढे गये पुनरुत्थानवादी मंत्र कितने कारगर सिद्ध हुए यह हिन्दी कथा यात्रा के विभिन्न पड़ावो मे समय समय पर खडे किये गये शिविरों से प्रकट है। हिन्दी कहानी के लेखक महत और आलोचक पडे इसे कभी आन्दोलनो के माध्यम से तो कभी पीढ़ियो की खानाबन्दी से, कभी कुछ तो कभी कुछ अभिधान देते रहे हैं।

प्रगतिशील धडे ने कहानी को आका अनुमोदित राजनीति से बांध कर फार्मूले की बैसाखियो पर खड़ा किया तो व्यक्तिवादियो ने उसे 'नदी के द्वीपो' मे निर्वासित कर दिया। उधर नई कहानी के शिल्प-साधको ने उसके साथ क्या-क्या न प्रयोग किये ? कभी कहानी को सेक्स की सुई पर नचाया गया तो कभी उसका भोगे हुए यथार्थ के साथ भोग किया गया।

अच्छा हुआ फार्मूला-बद्ध आइडियावाद, कुंठाग्रस्त व्यक्तिवाद और प्रयोगधर्मी यौन-प्राणायाम कहानी में लम्बे समय तक नही चले एवं कहानी सम्बन्ध-हीनता की तलाश में भटकने से बच गई। आज पुरज़ोर शब्दो में कहा जा सकता है कि दिशा हीनता या कि भटकन के दौर से निकलकर–स्वप्निल संत्रास, अतीत के प्रति वायवी रागात्मकता एव तटस्थ वैयक्तिकता को झटक कर कहानी जड़ मूल्यो और मान्यताओ पर आघात करती हुई अपने युग की ऐतिहासिक सच्चाई से आ मिली है।

जैसा कि सकेत किया गया है, अपने युग की प्रतिगामी एवं प्रतिक्रांति पोषक शक्तिया न केवल आर्थिक राजनीतिक सीमान्तों पर अपने तरफदार खडे किये रहती है बल्कि वह सांस्कृतिक मोर्चे पर भी तथाकथित चिंतक–दार्शनिक

पहरुए तैनात किये रहती है—जो साहित्य की रूपवादी सौंदर्यवादी व्याख्याएँ प्रस्तुत करके साहित्यकार के हौसले को तोड़ने का काम बड़ी शालीनता से करते हैं।

स्वार्थ-साधक, शोषण-केन्द्रित आर्थिक शक्ति सदैव राजनीतिक शक्तियों से गठ-जोड़ करके चलती है। उसके नतीजे में आतंकित जन ठगा जाता है—छला जाता है। इसी क्रम में वह इस कदर टूट जाता है कि उसमें कारखानों-सड़कों-खेतों बाज़ारों में खटने भर की सांस बच रहती है। अपने असंतोष को उघाड़कर लड़ने, अपने अधिकार की आवाज़ को उठाने की उसमें होस नहीं रहती। शासन-तंत्र के पुरोहित और अर्थ तंत्र के पैगम्बर बाह्य-संकट और आंतरिक कलह की आड़ लेते हुए रोटी के सवाल को इतना बड़ा सवाल बना कर उसके सामने रखते हैं कि दूसरे सब सवाल उसकी सोच से परे हो जाते हैं। यह बहकावा-छलावा इतनी सुनियोजित और सुव्यवस्थित 'इकोनोमिक सट्रेटेजी' के तहत होता है कि सामान्य-जनता को उसका भान ही नहीं होता। यही प्रतिबद्ध एवं संबद्ध साहित्यकार के सामने एक चुनौती आती है और वह उस चुनौती को जन—आकांक्षा की ढाल पर झेलता है। वह जन-जीवन के व्यापक जीवन्त संसार से जुड़कर अपने अनुभव-अनुभूति से सृजन के बीज ग्रहण करता है। उसकी अपनी जीवन-दृष्टि उसे फिर यथास्थिति से टकराने के लिए बढ़ावा देती है और वह परिवर्तनकामी साहित्य-सृजन के लिए जुट जाता है। यहां फिर राजनीति और अर्थतंत्र की दोगली ताकतें उसे रोकती है—सांस्कृतिक प्रगति को नवोत्थान और किन्ही अमूर्त-साधनाओं से जोड़ कर उसे अपने तयशुदा रास्ते से भटकाने के मनसूबे साधती है। आज़ादी के बाद भारत में बन आई दोहरी अर्थ-व्यवस्था ने यही सब कुछ किया है। यहीं पर साहित्य को 'अंधेरे मे चीख' का अभिधान देने वाले जनमते हैं।

पर अब साहित्य की रूपवादी एवं शोषण समर्थक व्याख्याएँ निरर्थक क़रार दे दी गई हैं। आज साहित्य ने और खास तौर से कहानी ने फिर अपना सवालिया तेवर अख्तियार किया है। उत्पीडित आदमी की दबी हुई आवाज़ को बुलन्द कर व्यवस्था-विधायिनी एवं अर्थ-नियतक एजेन्सियों और उनके बिचौलियों से पूछा है "बताओ, आज़ादी को पूरी एक पीढ़ी तक भोग कर उसे असमय बूढ़ा देने वाले इन्सान दुश्मन लोगों! तुमने स्वत्वहीन पीड़ा-पोषित आदमी को क्या दिया है? अट्ठाईस बरस तक बनने उभरने और लागू होने वाली विकास-योजनाओं के रसीले फल तुमने किस, किस फ्रीज में कैद कर रखे हैं? सन् ४८, सन् ६२, सन् ६५ और अब सन् ७१ के युद्धों और उनसे बन आई विपदाओं, वेदनाओं को ही हमें थमाते रहोगे या फिर आज़ादी के दौर मे बन आई थोड़ी बहुत खुशहाली में भी हमें कभी भागीदार बनाओगे? राष्ट्रीय-सुरक्षा, जनता का उत्तरदायित्व और

आजाद आदमी की नैतिकता के उपदेश झाड़ने वाले पीरों ! तुम बड़े किसान कैसे बन गये और मैं भूमि-हीन किसान कैसे बन गया ? मैं ! बंधुआ मजूर और तुम शेषनाग की नेति धारे विष्णु के अवतार क्यों कर बन गये ? समुद्र मथन मुझे सौंप कर लक्ष्मी को तुम हर ले गये और गरल मेरे गले में उँडेल दिया.......... पर अब यह सब सहन नहीं किया जायेगा। ज़रा सोचो तो सही मैं जहर खाकर तो जी सकता हूँ पर कटोरी भर दाल पीकर क्यों मर जाता हूँ ? है इस सवाल का कोई जवाब ?"

और जब नियति-निरस्त व्यक्ति को इन प्रश्नों के संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलते तो कहानी में उसकी लड़ाकू मुद्रा की अभिव्यक्ति होती है– और जब साहित्य अथवा उसकी विधा संघर्ष की मुद्रा धारण करती है– लड़ाई की भूमिका का निर्वाह करती है– तब न केवल उसका रूप-शिल्प बदलता है अपितु उसका समूचा 'डिक्शन' तब्दील हो जाता है। रूप-शिल्प और 'डिक्सन' की तब्दीली इसलिए भी जरूरी हो जाती है कि जिसकी पीड़ा को उकेरा जा रहा है वह भी उसे समझ सके– उसका भागीदार बन सके।

अब कहानी का कथ्य-कोण, परिवेश-प्रसंग, संदर्भ-संकेत और विचार-विज़न इतने बदल गये हैं कि परम्परा से चला आता वाक्-संभार उसे सहेज नहीं पाता– उसे जो इष्ट है या जिसको वह निष्पत्ति चाहती है उसके लिये रूढ़ शब्द और मुहावरे ओछे पड़ने लगे हैं—

लफ्ज़ आखिर लफ्ज़ हैं
अफ़साने सुना सकते हैं।
हक़ीकत तो अदा कर
नहीं सकते ए! दोस्त॥

कहानी जब उबलते जीवन की धधकती समस्याओं को अपने में समेट रही है तो उसे उस कोमल-कांत पदावली को झटक देना पड़ा है जो 'निगाह नीची किये पग-नख से धरा कुरेदती अपने आँचल के छोर में बल डालती चुप-चुप नायिका' के चित्रण में खर्च होती थी। ठीक भी है आग को गिलाफ कैसे पहनाया जा सकता है ? कहानी के पात्र पहले कहानीकार की अपनी विचारणा-कल्पना की उपज होते थे और वह उन्हें गढ़ी हुई भाषा में ढाल कर प्रस्तुत करता था। पर अब स्थिति और हो गई है। आज कहानी में उभरने वाले चरित्र रचनाकार की मानसी संतान न होकर सामने से गुज़रते हुए इतिहास-चक्र से उभरकर रूपायित होने वाले मानव हैं— मानववादी अमूर्त आस्था और विश्वास से परे जिनकी दरकार और

दलील है। उन्हें ढली हुई शब्दावली में ढाला नहीं जा सकता। वे तो अपने परिवेश और संस्कार की वाणी में मूर्त होते हैं— फिर चाहे यह वाणी वैदग्ध्य-विहीन होकर सीधी-सादी ही क्यों न हो। यों कहानी पर आज दोहरा दायित्व आ गया है— उसे जहां हकीकत को अदा करना या यथार्थ का निर्वाह करना है वही सृजनात्मकता को बरकरार रखना है। पर एक बात साफ़ है कि वह यथार्थ-निर्वाह अथवा युग सत्य की कीमत पर कला को तरजीह नहीं देती। ऐसा करने से जो कहानी चूकती है वह 'कलात्मक' बन जाती है और 'कलात्मकता' जब आदमी की बुनियादी दरकार पर हावी हो जाती है तब 'कलाबाजी' के नजदीक आ जाती है और कलाबाजी जैसे शगल में उलझने की फुर्सत आज किसे है?

भागीदारी की भी बात आई है। कहानी या कि साहित्य की किसी विधा की चेतना-वाहना में औसत या औसत से भी नीचे के आदमी को कैसे भागीदार बनाया जाय? अपने देश के प्रसंग में तो यह और भी टेढ़ा सवाल है। जहां लगभग अस्सी फी-सदी लोग अपढ़ हों वहां जनवादी प्रतिबद्ध साहित्य कौन भाड़ फोड़ लेगा? सुनाने वाले और भी खरा-खरा सुनाते हैं— आप कागज पर क्रांति करते रहे और अपने ही जैसे लेखकों के सामने खम ठोकते रहिये, क्योंकि हिन्दी में आज भी लेखक ही पाठक है और पाठक ही लेखक। यह शंका भी वे ही लोग खड़ी करते हैं जिन्हें भारतीय जनता के विवेक पर विश्वास नहीं है।

कूट-पदों और उलटबासियों पर सधी राजनीति के मारक हथकंडे और सुविचारित रण-नीति के अधीन अपने खिलाफ़ रची जाने वाली आर्थिक-दुरभिसंधि को तो आज का औसत आदमी भांप जाय किंतु अपनी बोली— भाषा से सम्बद्ध कवियों-कथाकारों के गीतों और कथा-स्वरों से बिल्कुल बेखबर रह जाय, यह कैसे मुमकिन है? अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने चौफेर बनने घटने वाले तन्त्र से अनजान है। शंका करने वाले जीव यह क्यों भूल जाते हैं कि आज देश में गैरबराबरी के खिलाफ जो समाजवादी लड़ाई लड़ी जा रही है उसमें ढाल बन कर तो ये ही अपढ़-अबूझ कहे जाने वाले लोग खड़े हैं।

एक सवाल यह भी है कि अनियंता स्वत्वहीन और अधिकार-वंचित का पक्ष-धर साहित्य क्या क्रान्ति ले आयेगा? साहित्य कभी क्रान्ति नहीं लाता, वह तो क्रान्ति लाने वाला मानस बनाता है। बनी हुई व्यवस्था के विरुद्ध निरन्तर विरोध की स्थिति में रह कर आदमी और आदमजाद के हक़ में कुछ मुद्दे उठाता है। मुद्दे व्यवस्था के हाथों हल कर लिये जांय तो ठीक अन्यथा साहित्य आदमी के हौसले को ललकारता हुआ जन-विरोधी, प्रतिक्रांति-पोषक सत्ता के विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान करता है। साहित्य संगीनें नहीं तानता पर हां तनी हुई

संगीनों के निशाने शोषण-कारी शक्ति-शिविरों की तरफ़ साधने और अंत में ट्रिगर दबाने का चेत आदमी को देता है।

सवालों के सिलसिले में आखरी एक सवाल और— जब तमाम आदमजाद एक ही ढब मे पैदा होते और मरते हैं— गंगू तेली का बेटा नंग-धड़ंग और राजा भोज का दुलारा मुकुट धारे नही पैदा होता। दोनों का जीना-मरना एक ढब मे होता है तो फिर आदमी आदमी मे फ़र्क क्यों किया जाय ? यो साहित्य मे आम और खास की चर्चा बेकार है ना ? दर्द की चुभन और पीड़ा की कराह सब ठौर एक-सी है तो फिर आदमी के दर्द और गम को अलग-अलग खानों मे क्यो तकसीम किया जाय ?

ठीक है लहू का रंग एक है पर खून बेच कर पानी खरीदने वाले आदमी और खून खरीदकर गालों की सुर्खी साधने वाले आदमी में तो फ़र्क किया ही जायगा ना ? गंगू के बेटे पर राजा भोज का कुमार सवार होकर मन बहलाये तब तो दोनों में फ़र्क करेंगे ना ! शराब से लबरेज जाम के छलक जाने का गम और कमज़ोर मा के लरजते हाथ से तल छूते दूध के प्याले के उलट जाने की पीड़ा मे तो अंतर करेंगे ना ?

वस्तुत. जैविक या प्राकृतिक दृष्टि से 'विशिष्ट' कृतिमता का द्योतक है और 'सामान्य' सहज और स्वाभाविकता का। इसीलिये वैशिष्ट्य का नकार और सामान्य का समाहार साहित्य का अभीष्ट रहा है। भारतीय-दर्शन मे अवतारवाद की अवधारणा इस बात का पुष्ट प्रमाण है। साहित्यकार ने सदा 'विशिष्ट' पर 'सामान्य' और 'असहज' पर 'सहज' को वरीयता दी है। श्रीराम का धनुभंग चमत्कार की सृष्टि करता है— उनके रामत्व को इंगित करता है। किन्तु सीता-हरण की वेला मे राम का व्यथा–आतुर–स्वरूप उनमे मनुजत्व का संप्रेषण करता है और सामाजिक का उनसे तुरत तादात्म्य स्थापित हो जाता है। यही तथ्य गोवर्धनधारी कृष्ण और "ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहि" की संवेदना से आपूर कृष्ण की छवि मे उजागर है। इसी को साहित्य-मनीषियों ने साधारणीकरण-जिसे सामान्यीकरण कहा जा सकता है–कहा है। तो स्पष्ट है साहित्य अपने प्रकृत स्वरूप मे 'सामान्य' के प्रति ही निष्ठावान रहा है।

०० इस देश में सन् 76–77 में लडी जा रही लडाई सन् 47–48 मे लड़ी गई लड़ाई से निश्चित ही भिन्न है। पिछली लडाई, विदेशी दासता से मुक्ति के नाम पर कुछ राजनेताओं की ओछी महत्वाकांक्षाओं तथा हठी राजनीति से बन आए देश के बटवारे की मार मे उजडे घरों को फिर से बसाने-जमाने की लड़ाई

थी। पर आज यहां मानव की चौमुखी मुक्ति के लिए एक बड़ी लड़ाई लड़ी जा रही है। इस लड़ाई के मंसूबे और निशाने (टारगेट्स) एक हैं और इसमें शामिल जूझारू जनों की नीयत और नियति भी एक है। इसलिए देश के किसी भी अचल में लिखे जा रहे साहित्य का मन-मानसिकता, उसकी प्रकृति-प्रवृत्ति में बहुत बड़ा बदलाव नहीं हो सकता। बस कुछ हथियार या लड़ाई की बुनावट, व्यूह-रचना, अलग हो सकती है। वह भी इसलिये कि अपने 'लोकेल' (Locale) या परिवेश, जो उनकी अपनी बोली, रीति-रिवाज, परम्परा-प्राप्त अवधारणाओं आदि से बना है, से सरलता से रमकर ज्यादा से ज्यादा लोग इस लड़ाई में भागीदार बन सकें। लोकेल या परिवेश की पहचान की शर्त कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। यही कारण है कि अचल विशेष का कहानीकार अपनी सभी कहानियों में इसका उपयोग नही करता। यह तथ्य 'मणि मधुकर' की कहानियों मे उजागर है। 'मणि' ने जहां अपनी कहानियो में रेत की रूखी रागिनी में रेगिस्तानी राजस्थान के सूखे राग बिखेरे हैं— सांडनियो की पीठ पर पार किये जाने वाले लम्बे रेतीले सिल-सिले या जल-खोजी लोग-लुगाइयो के रेत-अटे गैल-गुहार की बात करते हुए ढाणी-ढूह, छाण-छानर, प्यास-पीर, और ओग-जौवट को उकेरा है वहीं अपनी एकाधिक कहानियों में उसने ऐसा कुछ भी नही संजोया है। यही बात यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानियो के विषय मे कही जा सकती है। सही भी है, समूचा राजस्थान रेत का सागर ही तो नही। फिर जेठ के अंगार-अंधड़ से उड़ी रेत के आंखो मे भर जाने की पीड़ा और दिन भर आग उगलते सूरज की धाम में हाड़-तोड़ मजूरी करने के बाद दो रोटियो को तरस जाने वाली कसक मे अतर ही क्या है?

राजस्थान की पिछली पीढ़ी के कहानीकारो की कहानियों की "भित्ति स्वस्थ विचार-धारा और नैतिक नवनिर्माण पर खड़ी थी" जो "दर्शन और कौतूहल से आपूरित" होकर "ज्ञान, कला और पाठक को मोह लेने वाले जादू" से बनती थी तथा "भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सजीव पृष्ठभूमि" होकर "मानवता के विराट सत्य की रक्षा" मे अपनी विशेषता देखती हुई "अपराधी का ''''''सद् प्रायश्चित और हृदय-परिवर्तन ही सच्चा दण्ड है" की स्थापना करती थी। ऐसी कहानिया "प्रगतिवादी नही प्रगतिशील" लोग लिखते थे। कभी-कभी तो "प्रेतात्मा उनसे अपनी कहानी लिखा जाती थी।" "उन्होंने ऐसी कहानियाँ भी लिखी जो उन्हें स्वप्न में आई थीं।"

उद्धरण-चिह्नों के मध्य अंकित शब्द 'राजस्थान के कहानीकार (हिन्दी-भाग पहला) के विद्वान् सपादक ने संकलित कहानीकारों का परिचय, जो बहुत कुछ कहानीकारों के आत्मकथन पर आधारित है, प्रस्तुत करते हुए लिखे हैं।

अतएव उनकी सत्यता संदेह से परे है। पिछली पीढ़ी के रांगेय राघव जैसे कुछ कहानीकार निश्चित ही उपर्युक्त विचार-परिधि से परे होंगे किन्तु पिछले दौर में लिखी गई अधिकांश कहानियों को देखते हुए उपर्युक्त कथन एकदम निराधार नहीं कहे जा सकते।

इधर आजादी के लगभग एक दशक बाद उभरने वाले राजस्थान के कहानीकार 'आज' और 'अब' की चुनौतियों में जीते हुए धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक खेले खेलने वाले बटमारों की बुरी नीयत को अपनी नियति मानने से इनकार करने वाले लोगों की कहानियां लिख रहे हैं। उनकी कलम को प्रेतात्मा तो क्या कोई महात्मा तक नियंत्रित नहीं कर सकता। कलावादी जादू जगाने वाली, हृदय परिवर्तनकारी दर्शन-कौतूहल से भरपूर, कोरे नैतिक नव-निर्माण में समर्थ और अमूर्त मानवतावादी अवधारणाओं की पुष्टि में चुकने वाली कहानियां लिखने से वह गुरेज करता है। वह तो आज मानव को सबसे ऊपर-साहित्य से भी ऊपर मानकर उसके भौतिक-अस्तित्व की सुरक्षा एवं बराबरी के सम्मानीय जीवन के लिए समय सापेक्ष कहानियां लिखने में जुटा है। प्रस्तुत कहानियों के साथ ही राजस्थान के कहानीकारों के अन्य संकलन, 'आवाजों का जंगल', 'टुकड़े-टुकडे जिंदगी' और 'रेखान्तर', कमोबेश सूरत में इसी तथ्य को रेखांकित करते हैं।

सामाजिक पुनर्निर्माण के स्वर से प्रेरित बदले हुए मिजाज की परिवर्तन-कामी कहानियां लिखने वाले कहानीकारों की पांत राजस्थान में बहुत बड़ी है। नामों की पूरी-पूरी गिनती में चूक जाने का खतरा उठा कर ही नाम गिनाये जा सकते हैं। पानू खोलिया, अशोक आत्रेय, किशन शर्मा, मंगल सक्सेना, जगदीश वोरा, मनोहर वर्मा, राजानन्द, प्रेमचन्द्र गोस्वामी, मुकुट सक्सेना, बिशन सिन्हा, धर्मेश शर्मा, तारादत्त निर्विरोध, भगवतीलाल व्यास, श्रीगोपाल कावरा, सुरेश शर्मा आदि कुछ ऐसे नाम हैं जो सहज ही याद हो आते हैं। नामों की इस शृंखला में संकलित कहानीकारों के नाम तो जुड़े हुए है ही।

कहानीकारों की इतना बड़ी जमात में से सकलन के लिये कुछेक का चयन करना बड़ा बेढब और जोखिम का काम है। प्रस्तुत सकलन में कहानीकारों का चयन उनको या उनकी कहानियों को अन्य की तुलना में बड़ा या बेहतर दिखाने के उद्देश्य से नहीं किया गया है। उसके पीछे तो एक ही लक्ष्य है कि इस संचयन के माध्यम से राजस्थान में इधर लिखी जाने वाली कहानी की प्रकृति-प्रवृत्ति और उसके स्वरूप-भाव की ठीक-ठीक पहचान हो जाय। बानगी या नमूना

पूरे की पहचान करवाता है तो वह स्वयं उस पूरे में सम्मिलित होता है। नमूना हो जाने से वह विशिष्ट नही हो जाता। इसी भावना से यहा कहानियाँ जुटाई गई है। यदि पृष्ठो की सीमा निर्धारित नही होती तो कुछ और भी कहानियां प्रस्तुत संग्रह को व्यापक स्तर पर सार्थकता दे सकती थी। जहाँ कहानी को पृष्ठ की सीमा बनाना चाहिये वही यहाँ पृष्ठ कहानी की सीमा बाध रहे हैं–इसे विडम्बना ही तो कहेगे। कहानी की इस बातचीत को 'अधूरा सिलसिला' इसीलिये कहा गया है।

००० कहानीकार साथियों की ओर से जो सहयोग मिला है; उसके लिये किसी औपचारिकता को न ओढते हुए मैं उनके प्रति अपने मन में मौन नमन का भाव धारे हूँ।

राजस्थान साहित्य अकादमी के सृजनात्मक-विभाग के मान्य-सदस्यो ने इस संकलन के संचयन-संपादन का जो दायित्व मुझे दिया है उसके लिये मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

अकादमी अध्यक्ष पं० विष्णुदत्तजी शर्मा एवं निदेशक डा० राजेन्द्र शर्मा ने तत्परता पूर्वक इस संकलन के प्रस्तुतीकरण में जो स्नेहमय सहयोग दिया है, उसके लिये मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अक्टूबर, १९७७
हिन्दी–विभाग
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

–आलमशाह खान

□

आत्म बोध

□

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

आत्मबोध

उसने बम्बई नगरी की सबसे बड़ी विशेषता यही पायी कि यहां कुछ भी काम न हो पर आदमी अपने आपको व्यस्त महसूस करता है। उसे अपना एक-एक पल अत्यन्त व्यस्तता से दबा हुआ लगता है। वह समन्दर के किनारे बैठा हुआ यह अनुभव करता है कि वह भाग रहा है, यन्त्र की तरह चल रहा है। इसलिए उसने दस वर्षों के अनुभवों के निचोड़ के रूप में यह जान लिया है कि किसी को भूखों ही मरना है, वह भी बेकार रहकर, तो उसे बम्बई में रहना चाहिए।

वैसे वह एक साहित्यिक मासिक पत्र के एक दफ्तर में पार्ट टाइम काम करता है और अपने को 'दिगम्बरी पीढ़ी' का एक सशक्त लेखक व कवि मानता है। अश्लील से अश्लील अभिव्यक्ति को वह साहस के साथ प्रकट करता है, प्रकाशन के अभाव में स्वयं एक-एक फार्म के पेम्फलेट छाप लेता है। मुफ्त में बांटना उसे सैद्धान्तिक रूप से गलत लगता है, इसलिए वह उनकी कीमत पहले लेता है।

अभी वह चर्चगेट के मुख्य दरवाजे के बीचोबीच खड़ा था। छोटे-छोटे बाल, छोटी-छोटी घनी काली दाढ़ी-मूंछ, जिसे वह इसलिए रखता है कि उसके चेहरे पर दो तीन सफेद दाग हैं जो दिखायी न पड़े। अपने से जुड़े हुए परिवेश को देख-देख कर वह सोच रहा था कि वह दरवाजे के बीच खड़ा हुआ नहीं है बल्कि दरवाजे के दोनों उपरी कोनो से उसके हाथ चिपके हुए है और वह घड़ी के पेंडुलम की तरह झूल रहा है। लोग उसके नीचे से गुजर रहे हैं। लम्बे कद वाले उससे टकरा कर जा रहे हैं। इस विचार ने उसे बड़ी देर तक बुत की तरह बनाये रखा। एक व्यक्ति ने उसे टक्कर मार कर यह बताया कि वह बुत नहीं, एक आदमी है, नितान्त कमजोर आदमी ! जो एक धक्के से गिर सकता है।

उसका बण्डल नीचे गिर गया था। धक्का मारने वाला व्यक्ति अत्यन्त ही व्यथित स्वर में बोला, 'आइ एम वैरी सॉरी····· सॉरी प्लीज ! वह अपने बण्डल को संभाले इसके पहले ही वह व्यक्ति भीड़ में खो गया।

वह याने दिनेश बण्डल दबाकर खड़ा हो गया। सामने एक छोकरा नवभारत टाइम्स लिये जोर-जोर से चिल्ला रहा था– 'जगतगुरु शंकराचार्य की स्थिति बिगड़ी, संत फतेहसिंह आत्मदाह करेंगे .... हनोई की आबादी वाले क्षेत्र पर बम वर्षा ...... !'

वह सब सुनता रहा फिर हँसा। इस बौद्धिक युग में जब समस्त मानवीयता को एक सूत्र में पिरोने की बात चल रही है– लोग जानवर व दाढ़ी-मूछों के अस्तित्व हेतु लड़ रहे हैं। यह हिन्दुस्तान ! सचमुच अजब राष्ट्र है ! यहां किसी को कोई स्वतन्त्रता नहीं। न खाने की और न .... ! उसने एक अश्लील शब्द का प्रयोग किया पर वह अपने आसपास की भीड़ की वजह से चाह कर भी उस शब्द को अपनी जिह्वा पर नहीं ला सका।

उसने घड़ी की ओर देखा। पांच बज गये थे। दफ्तरों की भीड़ तेजी से चर्चगेट में घुस रही थी। अनेक अजीब आकृतियां। सबके सब अजनबी ! इन अजनबियों में उसे अपना एक परिचित चेहरा चाहिए। मिस नर्गिस का ! पता नहीं नर्गिस के नाम के साथ उसके मन में एक चिकनाई का फर्श जम जाता है और उसकी इच्छा दिगम्बर होकर उस पर फिसलने की हो जाती है।

वह भीड़ में नर्गिस को ढूंढने लगा। ढूंढते-ढूंढते उसे अपने बण्डल का ख्याल आया जो बगल के नीचे खिसक गया था। उसने उसे वापस ठूंसा, ठीक मिस नर्गिस के हाथ की तरह जिसे वह प्रायः जुहू की रेत में पड़े-पड़े दबा बैठता है। पहले हाथ दबाता है और बाद में उसकी वह छाती जिसका मांस बकौल नर्गिस के किसी रोग ने खा लिया है। दिनेश को उसकी इस बात पर अक्सर गुस्सा आ जाया करता था। 'यह साली मुझसे भी झूठ बोलती है। मेरी छाती को कोई रोग खा गया।'– किसी और को बनाया करो डार्लिंग, दस वर्षों से मैं साहित्य-सृजन करता हूँ, भोगे हुए जीवन पर लिखता हूँ, नारी-मनोविज्ञान पर तो अपनी मास्टरी है। मास्टरी है, इसलिए कह सकता हूँ कि यह रोग कौन सा है ? उसके किटाणु कहां रेंगते हैं ? इस बीच कितने चेहरे गुजर गये, उसे नहीं मालूम !

'हलो दिनेश !'

'हलो।' फिर वह चौंका। आगन्तुक से हाथ मिला कर बोला 'कहो डियर गणेश ! बड़े दिनों से मिले।'

वह गर्दन को झुंझलाहट से हिला कर बोला, 'दोस्त ! यह बम्बई है

न, यह किसी को यार नही । बोरीवली रहता हूँ, मिलने-जुलने का समय ट्रेन मे कट जाता है।'

'ग्राजकल क्या लिख रहे हो? मेरा नया संकलन पढा न! ...... नहीं। ग्ररे चुगद, नौकरी के लिए ग्रपनी प्रबुद्ध प्रतिभा को मत मारो। ग्राजकल साहित्य में बड़े-बड़े मोड़ ग्रा रहे हैं। बंगाल में भूखी-पीढ़ी ने तूफान मचा रखा है, दिल्ली के सचेतन कहानी के ग्रान्दोलन ने भी ग्रपने ग्रस्तित्व को एक सीमा तक स्थापित कर लिया है, सम्प्रति तेलगु साहित्य मे 'दिगम्बरो' का दल ग्रा रहा है। मैं इसे हिन्दी में स्थापित करके ही रहूँगा। ... सत्य को उगलना ही युग बोध का सच्चा प्रतिनिधित्व है।'

गणेश ने घडी की तरफ देखा। फास्ट ट्रेन में सिर्फ पाँच मिनट बाकी थे। उसने विवशता से दबे स्वर मे कहा, 'इन ट्रेनों की टाइमो ने साहित्य से ग्रलग कर दिया है। यार! तू ठहरा कुँवारा, फक्कड, ग्रक्खड़। न दिन की चिन्ता ग्रौर न रात का फिक्र! जहाँ मिल गया, वहाँ खा लिया ग्रौर जहाँ बिस्तर बिछ गया वहां सो लिया। हम तो शादी करके ग्रब पछता रहे हैं।'

'पछता रहे हो, छि: मेरे ख्याल से बोर हो रहे हो? यह ऊब, उकताहट, ग्रकेलापन ग्रौर रिक्तता का बोध मेरे विचार से शादीशुदा व्यक्तियो को ग्रधिक है। यार! तुम एक ग्रौरत से बोर नही होते?'

'नही तो।'

'लगता है, तुम ग्रठारहवीं सदी के ग्रादमी हो।'

'ग्रच्छा मैं चला।'

'ठहर न यार!'

'भाई, मुझे सब्जी लेकर जाना है।' वह उसकी थोड़ी भी चिन्ता किये बिना भाग कर भीड़ में खो गया। दिनेश मन ही मन बड़बड़ाता रहा, 'ये लोग इसी तरह मरेंगे। मरने दो सालो को; जब शादी करेंगे तो उस मगल त्यौहार पर उपस्थित होने की सादर प्रार्थना करेंगे बाद मे सब्जी, ग्राटे, नमक तेल ग्रौर लकड़ी के लिए ग्राधुनिकता मे वंचित होकर दडबे सियार की तरह ग्रपने ग्रपको बना लेंगे। ये बेचारे चूहे! उसका मन ग्रपने हर मित्र को देख कर जिस तरह सदा वितृष्णा से भर ग्राता है, ग्राज भी उसी तरह भर ग्राया। फिर उसकी दृष्टि उस भीड पर जम गयी जो दफ्तरों से ग्रा रही थी।

ग्राखिर ग्रजनबी चेहरों में उसे ग्रपना परिचित चेहरा नजर ग्रा ही

गया। निस नर्गिस उदास-उदास सी आ रही थी। उसने तुरन्त सोचा– ये टूटे लोग ! चलती फिरती लाशें ! ऐसे आ रही है जैसे किसी ने उसके जिस्म से खून निचोड लिया है।

'नर्गिस !'

नर्गिस उसके पास आयी।

'क्या आज बीमार हो ?'

हाँ बीमार हूँ। तुम मुझे बीस रुपये दे सकते हो !'

'बीस क्यों ? आज तुम्हें पचास रुपये तक दे सकता हूँ। पर तुम मुझे पहले समन्दर के किनारे ले जाओगी। हम जुहू के तट पर बैठेंगे। आज मुझे कुछ नया भोगना है। क्यों नही हम एकदम नंगे होकर पानी मे भागें ? पानी तुम्हारी जाघों के बीच से फिसल कर. और मैं एक कविता लिखूंगा– ११– दो इक्के आमने सामने और उस पर लिखूंगा– नगा नंगा ······ नंगा। कविता का शीर्षक होगा– नंगा ! अच्छा प्रयोग होगा।'

'मैं आज तुम्हे कम्पनी नही दे सकूंगी। डियर ! मेरी बहिन बीमार है, उसके लिए बीस रुपये चाहिए। तुम दे सकते हो तो जल्दी से दो मुझे अगली फास्ट ट्रेन पकड़नी है।'

उसे अप्रत्याशित इतना गुस्सा आया कि वह अपनी बगल का बडल खोलकर जमीन पर पटक दे और लोगों की भीड इस तरह इकट्ठा कर ले जैसे कोई मजमे वाला करता है। फिर एक-एक परत खोले और लोगों को बताये कि मसार मे लोग किस तरह दूसरो के सपनो को रौंदते हैं। सच ये औरत आजकल त्याग की जगह स्वार्थ को होठो पर बिठाये रखती है, परेशानी के शब्द उसकी चेतना में हरदम तैयार बैठे मिलते हैं। कै की तरह उगल देती है वे शब्द !

'मैं तुम्हें आज नहीं जाने दूंगा।' दिनेश ने जैसे निर्णय लिया।

'क्यों'

'क्योकि आज मुझे तुम्हारी दरकार है। दिमाग कह रहा है। जब मेरे मस्तिष्क की नसें फटती है तब मुझे तुम्हारे जख्म की जरूरत पड़ती है, हाय तुम्हारे·······!'

'तुम पागल हो गये हो। मुझे लगता है कि इन्सानी जज्बातों से कट से रहे हो। मैं जाती हूँ। ऐसी स्थिति में जब कि दर्द ही दर्द मेरे दिल में हों, मैं प्यार-मुहब्बत की कोई बात नहीं कर सकती।'

'जा सकती हो। खड़ी क्यों हो ? मैं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हामी हूं। जबरदस्ती करना मेरे सिद्धान्तों के खिलाफ है।'

नर्गिस चली गयी। वह चर्चगेट से समन्दर की ओर चला। अपने आप में लीन और डूबा हुआ।

'हलो दिनेश !'

दिनेश ने गर्दन उठायी। देखा— संतोष था। किसी अच्छे साप्ताहिक में सह-सम्पादक था वह।

'कहां से आ रहे हो' ? सन्तोष ने उसे देखते ही पुकारा।

'जहन्नुम से।'

बहुत जल्दी आ गये। क्या वहां भी अन्डर ग्राउण्ड सड़कें बन गयी हैं ? इतनी भीड़ में इतनी जल्दी ···· !'

'तुम चुप रहो। तुम्हें मालूम ही है कि मुझे लोकप्रिय लेखक पसन्द नहीं। गुलशन नन्दा के तुम परिमार्जित रूप हो।'

संतोष जरा मुंहफट था। उसकी बात से चिढ गया। कठोर स्वर में बोला, 'ओ उल्लू के पट्ठे, हमारे जीवन का ध्रुव सत्य खालीपन, नंगे होकर भागने की इच्छा और ऊब ही नहीं है। तुम्हारी अ–कहानी पढ़ी थी। रिश्ते !' ········ उसने अपने बैग में से एक पत्रिका निकाली। ···· उसका हाथ पकड़ कर बोला, "जरा एक किनारे आओ, तुम्हें अपनी ही कहानी सुनाऊँ ?"

उसी समय तीन साहित्यकार और आ गये। बहस शुरू हो गयी। सस्ते पारसी रेस्त्रां की तलाश हुई। राइट हैंड के लास्ट कॉर्नर के रेस्त्रां में वे घुसे। संतोष ने कहा 'आप मुझे समझा दीजिए इस कहानी के सारे सन्दर्भ !' 'तुम अ-कहानी को क्या समझते हो ?'

संतोष गंभीर होकर तेज स्वर में बोला, "मैं यदि नहीं समझूंगा तो तेरा बाप भी नहीं समझेगा और यदि तेरा जायज या नाजायज बच्चा इस पृथ्वी पर है या होगा तो वह भी नहीं समझेगा। ········ बोलते क्यों नहीं वर्मा ?"

'पहले चाय का आर्डर दो।'

'आर्डर देगा यह पत्थर।'

'कौन पत्थर ?' मनुज ने बालों को कंघी में बनाते हुए पूछा। वह तलवार कट मूंछें भी रखता था।

'मिस्टर दिनेश ! दायित्वहीन घोर एकान्तिक पीड़ा वहन करने वाला, युग-बोध, अति आधुनिकता का पारखी, भोगे हुए क्षणों की जीवंत प्रतिमा ······ यह पत्थर !'

'मैं क्यों ?' दिनेश ने प्रश्न किया।

"इसलिए कि तुम्हारी अ-कहानी को समझने के लिए चाय निहायत जरूरी है वर्ना अ-कहानी के तत्वों, परिवेश, गहराई, शिल्प और तोड़-फोड़ को कौन समझेगा। अब आर्डर दे दो। भाई ! तेरी तरह अकेले और समस्त आर्थिक जिम्मेदारियों से मुक्त होते तो हमारी ओर से चाय की जगह कॉफी के दौर चलते।' संतोष ने कहा।

सबके दबाव की वजह से दिनेश ने आर्डर दिया। संतोष ने नाटकीय अन्दाज में कहा, "हे कथा श्रवण करने वालो ! ध्यान से सुनो, और न समझ में आये तो हुंकार भरो। कहानी की शुरुआत होती है– उसने अपने बिस्तर पर सोयी पत्नी के जिस्म पर हाथ फेरना चाहा, पर सलमे-सितारों से जड़े ब्लाउज पर हाथ चला गया, इस स्पर्श ने उसे उस नेवले की याद दिला दी जिसको छूने ही उसे कांटों की चुभन हुई थी।··· वह नेवला ···· खेत में दौड़ रहा था। दौड़ता ही जा रहा था। उसके पीछे भाग रहा था वह ! काश ! वह अपनी मूर्खता पर तरस खाता और उसकी जगह वह किसी हिरोइन के पीछे भागता···· खट् ! अरे बच्चू की माँ, यह बिच्छू कहां से निकल गया ? वह गुस्से में भर उठा और उसने पकड़ के कहां वहां से जख्म ! ···· जख्म उस शब्द ने उसे कितनी ही औरतों का स्मरण करा दिया और वह बर्थमेंट···· ···

वर्मा ने बीच में ही कहा, 'भाई दिनेश एक चाय और चाहिए। कहानी ज्यादा भारी है।' 'नहीं ! तो कहानी यानी तुम्हारी अ-कहानी फिर सुनेंगे। जाने भन ! ऊटपटांग लिखना ही अ-कहानी नहीं है। मान गये, आज के युग-बोध के ज्ञाता विख्यात लेखकों के पास 'बोध' की जगह 'शोध' रह गया है। शोध में मेहनत पड़ती है इसलिए उनके पास सिर्फ भोग रह गया है।'

वे उठ गये। हंसी के फव्वारे से रेस्त्रां भर गया। आस पास के लोग उनके ठहाका मार कर हंसने पर विस्मित हुए। उनकी नजरें उनके चारों ओर आकर टंग गयी जैसे वे पूछ रही हों कि इस बम्बई में लोग ऐसे खुलकर भी हंस सकते हैं। वे बाहर आ गये।

समन्दर में एक लहर हहराती हुई आ रही थी। ठंडी हवा के झोंके तट

की दीवार पर बैठे लोग ले रहे थे। अपनी दृष्टि सागर में जाते हुए सूर्य पर जमा कर दिनेश ने सोचा कि आज इन लोगों ने उसे ठग लिया है, उल्लू बना दिया है। ये थर्ड रेट के लेखक-पत्रकार! दिन भर पूंजीपतियों के 'मस्का' लगायेंगे और सांझ को व्यक्ति स्वतन्त्रता व इकाई-सत्ता की बात करेंगे। साले तैली के बैल! सहसा उसे सुनायी पड़ा कि सभी साथी उससे विदा ले रहे हैं। उसने हाथ मिलाते हुए सोचा कि सबके हाथ खींच-खींच कर अलग कर दूं। समुद्र में फेंक दूं।

वे सभी चले गये। वह समुद्र के किनारे बैठ गया। फिर परसियन डेरी फार्म की ओर आया। एक आंख के आगे पट्टी बांधे हुए औरतों के दलाल ने कहा, 'कोई चीज़ दिखाऊं बाबूजी! बिहार से आयी है, एक दम ताज़ी चीज़। बिहार की भूख ने अपनी परियां लुटा दी।'

उसने कोई जवाब नही दिया। वह चुपचाप खड़ा रहा। एक बार 'क' पत्र के प्रधान सम्पादक ने उस पर व्यंग कस कर उसकी कहानी लौटा दी थी, 'भाई दिनेशजी! हम आपकी कहानी छापने मे असमर्थ हैं। ऊब—खालीपन, उदासी की परछाइयां आदि शब्दों के प्रयोग से हम भी ऊब गये हैं।'''''' क्या आप चुक गये हैं! क्या आपने दिमागी जीवन का ही भोग किया है। ज़रा जीवन को रेस्त्रों, पड़ोसी की लड़की, मास्टरनियों, नसों में ही न भोगिये'''''' जीवन और भी है!' वैसे वह कई बार वेश्याओं के यहां जा चुका है। कांग्रेस हाऊस की पेशेवर वेश्याओं के यहां तवायफों की महफिल में गाना भी सुन चुका है। लेकिन यह बिहार की छोकरी है। रंडी नहीं है, इसे भूख ने आयी है। यह भूख! छि: यह भी कोई बात हुई। भूख! आज यहां की सारी बुद्धिजीवी पीढ़ी यौनाक्रांत है, कुंठाओं से ग्रस्त है, अजीब सी ग्रन्थियों के बीच आज का जीवन भूल रहा है, यहां भूख-भूख-भूख ''''गेहूं की भूख, अमरीका, आस्ट्रेलिया, रूस के गेहूं की भूख! पर मुझे एक ही भूख है!

उसने एक टैक्सी ली। टैक्सी पर बैठते हुए उसने ड्राईवर से कहा, 'भाई, ज़रा धोबी तालाब!'

वह धोबी तालाब के मेट्रो सिनेमा के पास एक मकान में घुसा। क्रिश्चियन का एक मकान! ढका-ढका। घुटनदार। एक ब्लेक रंग की लड़की ने उसे 'हलो' किया। दिनेश उसे बहुत पहचानता था। मिस्टर ब्लेक की इस बेटी को जिसका नाम 'ब्यूटी' था, वह 'ब्लेकी' कहता था।

'हलो ब्लेकी, क्या हाल चाल है?'

"अच्छा है। तुम हमको उस दिन खाली पीली बूम मार गया। हम तुमारा रीगल के आगे वेट करता रहा।'

वह हंसा। हंसकर बोला, 'डार्लिंग, तुम हमारा उदर वेट करता रहा और हम तुम्हारा एम्पायर मे वेट करता रहा। क्या करें, हम अपनी आदत से बड़ा मजबूर है। भूल जाता है। साली यह 'कंट्री' है न, एकदम रद्दी शराब है, मैमोरी को कमजोर करती है। किस देगा ?'

'नो ! बाबा इज कमिंग।' वह भाग गयी। दिनेश एक मस्ती में झूल गया। उसने उत्साह से आवाज लगायी, 'मिस्टर ब्लेक !' मिस्टर ब्लेक बहुत खामोश रहने वाला जीव था। सिर्फ काम की बात करता था। बोला, 'कितना पैग मागता है।'

'दो।'

फिर वह धीरे धीरे चार पैग चढा गया। बाहर निकला। सदा की तरह अपने भय को भगाने के लिए उसने मोरारजी भाई को गाली दी कि कम्बख्त ने नशा बन्दी कर दी। फिर उसने सदा की तरह यह भी निर्णय लिया कि वह अपना एक 'परमिट' बनाएगा। वह फुटपाथ पर जल्दी-जल्दी चलने लगा। उसे पुलिस का भय लग रहा था। तभी उसे टैक्सी मिल गयी। वह उस पर चढकर पान वाले के पास आया। इलायची के दो पान खाये ताकि आसपास वाला इलायची की सुगन्ध मे मस्त रहे। बाद में वह परसियन डेरी फार्म के उसी नुक्कड के पास खड़ा हो गया। वही दलाल फिर उसके पास आया, 'दिखाऊँ माल बाबूजी, कोलाबा में है। खालिस बिहार का।'

बिहार !

दस वर्ष पहले जब वह अपने घर 'छपरा' को छोड कर आया था तब कितना अच्छा था। दिनेश उर्फ दयाराम बी. ए.। विगत को उसने एकदम दफ़ना दिया था—मा, बाप, भाई, बहिनें और अपनी भोली-भाली ग्रामीण पत्नी को ! इस बड़े शहर मे आकर वह दिनेश बन गया। नाम, पता, गाम-धाम, परिचय सभी बदल गये। जैसे वह झूठ बन गया है। सच्चा झूठ ! और चेहरा, चेहरा छोटी-छोटी दाढी से बदल गया, वह भी झूठ बन गया है। पता नहीं, दयाराम उर्फ 'दिनेश' किस उपलब्धि की खोज में अपने को झूठ बनाये हुए इस महानगर की भीड़ में खो गया है।

दिनेश को लगा कि उसके भीतर इस बिहार के सन्दर्भ ने हाहाकार मचा दिया। स्मृतियों को नंगा कर दिया है। दम भूखे बिहार ने। वह कांप गया। वहां इन्सान मर रहा है, अनाज के एक एक दाने के लिए तरस रहा है। उसे अपने चारों ओर इन्सानों के ककाल नजर आये और उसे अपने आप से भय सताने

लगा। अपने अन्तस के भय से पलायन के लिए उसने दलाल को कृत्रिम रोबाली आवाज़ में कहा, 'कहा है, दिखाओ ?'

दलाल ने एक टैक्सी मंगवायी। दोनों बैठ गये। उसे रह रहकर प्रतीत हो रहा था कि वह अभी खालीपन से नहीं, ज्वलंत प्रश्नों से भर गया है। पीड़ादायक-भूखे प्रश्नों से। वह उद्विग्न हो उठा।

टैक्सी रुकी। उसने पांच का नोट दिया। दलाल ने बाकी पैसे लेकर अपनी जेब में डाल लिये। हालांकि उसका यह व्यवहार रुचिकर नहीं लग रहा था पर अभी किसी ने उसका गला दबा रखा था। वह कुछ नहीं बोला। कोलाबा की कौनसी स्ट्रीट है, उसे मालूम नहीं। वह उसके साथ चोर की तरह एक मकान में घुसा। बड़ा हॉल था। उसमें अलग अलग केबिन थे। दलाल ने उसे एक केबिन में बिठाया। थोड़ी देर में वह एक लड़की जो वस्तुतः औरत थी, को लाया। बोला, 'एकदम फ्रेश माल ··· बाबूजी ··· !'

दिनेश ने देखा—बाब्ड हेयर, स्लीवलैस ब्लाउज, रेशमी साड़ी, आकर्षक मेकअप ! वह उसके सामने खड़ी रही। नुमाइश की चीज़ की तरह। फिर बोली, 'क्यों ?'

दिनेश ने दलाल की ओर मुखातिब होकर पूछा, 'क्यों, ये बिहार की है ?'

'हां !'

'क्या प्रमाण ? यह तो भूखे बिहार की नहीं लगती !'

'लड़की झल्लाकर बोली, 'क्या बिहार-फिहार लगा रखा है !'

दलाल ने कहा, 'बाईजी, यह असली बिहार ······ !'

'मैं असली बिहार की हूं। गांव ······, बाप का नाम········, ससुर का नाम ·· पति का नाम ···· साला कविता करता था, कहीं करता होगा, और बीबी······ !'

दिनेश को लगा कि कोई उसे चाबुक से सटासट पीट रहा है। यह उसकी बीबी है। उसकी गर्दन नीचे झुक गयी। उसकी पत्नी कह रही थी, 'यह साला क्या बठेगा, तुझे 'हरजाई' हज़ार बार कह रखा है, ऐरे-गेरे को मत लाया कर, पहले कह दिया कर, मैं पचास से कम नहीं लेती हूं। ले जा इसे फॉकलैंड रोड पर, छोड़ आ ······ चवन्नी-अठन्नी-वालियों के यहां ! वह बाहर चली गयी। दलाल ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, 'यहां इतनी देर नहीं

लगानी चाहिए, यहां सब काम तुरन्त होता है, चलो, मुझे पांच रुपये देकर छोड़ो। सारा समय खराब कर दिया। कोई और ग्राहक पकड़ता तो ज्यादा रुपये मिलते।'

वह उसे खींचता हुआ नीचे ले आया। दिनेश ने उसे पांच रुपये दिये। वह चला गया। वह चौराहे पर आकर खड़ा हो गया। घंटों सोचता रहा-पहली बार उसे आत्म-बोध हुआ कि सत्य यही है कि मुझे बस के नीचे आकर मर जाना चाहिए। विशाल बस अजगर सी आ रही थी और वह उसकी ओर बढ़ रहा...... । □ □

एक और मौत

□

आलम शाह खान

एक और मौत

कल जोर का पानी बरसा था। एकाएक ही उमस उठी, बढ़ी और फिर गहरा कर घनी हो गयी थी। कहीं हवा नहीं, उजास नहीं—बस धुंधलका और घुटन। उसे लगा था, जैसे किसी ने सारी बस्ती को डिबिया में बंद करके उमस और धुंधलके में छोड़ दिया है। ठीक उसी तरह जैसे वह दूध और चीनी के घोल को डिबिया में डाल कर, कुल्फी बनाने के लिए घडे में छोड़ देता है।

बिजली-घर के पहले भोंपू के साथ वह उठा था। नीम चबाते-चबाते उसने दूध, चीनी और बर्फ के लिए सत्ती से पैसे मांगे थे—तभी छाती चिचोड़ते टेऊ को परे धकेल कर वह भन्नाती हुई उठी थी और पैसे धरने की कुलिया को औंधी करके उसके सामने फेंक दिया था—बजाय सिक्कों के उसके सामने काली ठीकरियां बिखर गयी थीं। उसकी आंखों के गड्ढों में सूरज की लाल झाईं भभक उठी थी पर दूसरे ही पल लुंगी की गांठ ठीक करता हुआ वह घर से बाहर हो गया था। नौ बजते-बजते जब वह लौटा, तब तक उसने उधारी पर सब जुटा लिया था। बिना मुंह खोले वह फेरी की तैयारी में जुट गया था और कोई घंटे भर बाद ही कुल ही . मलाई, की टेर बुलन्द करता हुआ कंधे पर घड़ा चढाये वह घर से निकल पड़ा था।

'खास बाजार' से हो कर स्कूल जाने वाली सडक पर जब वह पहुँचा तब सूरज तपने लगा था। अब उसे अपने कंधे पर घड़े के साथ ही झुलसा देने वाली किरनों का बोझ भी महसूस होने लगा। पीठ पर पसीने से चिपके गाढ़े की फटी कमीज पर किरनें कोडे की तरह लग रही थीं। मोटर-टायर के उधडे हुए चप्पल से बाहर निकली अंगुलियाँ कोलतार की नंगी सडक में जब-जब [illegible] जाती थीं, उसे लगता था, जैसे उसका पैर तातें तवे से छू गया हो। पर उससे उसे एक अजीब राहत महसूस हुई थी। 'ऐसी तपन में ठंडी कुल्फी भला कौन नहीं खाना चाहेगा?' इस खयाल की कौंध के साथ ही उसने टेर लगायी थी—'कुल-ही मलाई' जो सुनसान सडक के किनारों पर खड़े बिजली के खंभों में टकरा कर फिर उसके कंठ में आ कर बैठ गयी थी।

छोटे मदरसे से बड़े मदरसे तक ढेर सारी कुल्फियां निकल जायेंगी.... उसने सोचा था और उसके कदमों में अपने आप ही तेजी आ गयी थी। सामने गली के नुक्कड़ पर खेलते बच्चों को देख कर उसने फिर हांक लगायी। 'ए कुल्फी' की आवाज के लगर के साथ वह गली की ओर मुड़ा ही था कि उसकी आंखें बंद हो गयीं। कुछ पल बाद उसने धूल भरी आंखें मलते हुए गली की तरफ देखा तो पाया, बच्चे घरों की ओर भाग रहे हैं। एकाएक ही जोर का अंधड़ आया था और आकाश में धूल घुमड़ने लगी थी। आसपास की दुकानों और कच्चे मकानों के टीन टप्पर उड़ने लगे थे। मंदिर के आंगन में खड़े पीपल के पत्ते सिक्कों की तरह बज रहे थे। थोड़ी ही देर में चारों ओर धुंध भर गयी और बड़ी-बड़ी बूंदें गिरने लगीं। फिर जो पानी बरसा तो लगा, जैसे आकाश को आज किसी ने बींध डाला है। मंदिर के छज्जे के नीचे घड़ा रख कर उसने आकाश की ओर देखा। आधे आसमान पर चढ़ कर तपने वाला सूरज गल-गल कर बह निकला था .. तो आज उसकी कुल्फियां भी इसी तरह गल-गल कर बह जायेंगी इस आशंका के साथ ही उसकी आंखों के कोर भीग गये थे और जल डूबी पुतलियों से वह भीगे आकाश में सूरज को ढूंढने लगा था।

००० बिन मौसम की बरसात में भीगा आकाश आज दूसरे दिन भी एकदम साफ नहीं था फिर भी हवा खुश्क थी—उसमें एक तरह की खनक आ गयी थी। कल उसका बड़ा नुकसान हो गया था। सांझ घिरते-घिरते पानी थमा था तब वह भीगे तन और भारी मन से घर पहुंचा था। सत्ती ने फुरती से कुल्फी की डिब्बियां भगोने में औंधा कर उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया था। सोचा था, कुल्फी के घोल को पिला कर ही बच्चों की भूख को बहला दिया जायेगा। पर थोड़ी-सी आंच लगते ही दूध फट गया था और वे दोनों फटी-फटी आंखों से आकाश में फटते हुए बादलों को देखते रह गये थे।

चूल्हा गरम करने की जुगत आज थी नहीं.. री ....री करते देऊ के मुंह में अपनी ढलकी छाती को ठूंस कर उसे घास की पूली की तरह बगल में लटकाये आज सत्ती तड़के ही रिफ्यूजी कालोनी के उस नुक्कड़ की ओर चल पड़ी थी, जहां एक अधबना टीन से ढका मकान अकेला खड़ा था।

—बुधो यो .. टोपन की हालत अच्छी नहीं . वहीं जा रही हूं। देहरी पार करती हुई सत्ती की आवाज उसने सुनी थी। पहले तो उसे गुस्सा आया। —चार चड्डियां और दो बड़े थैले जो कल सिलने आये थे वही निकाल देती.... उसने उसे टोकना चाहा पर उसके मुंह में नीम का दातून था। कड़वा मुंह पहले

ही था। कड़वी बात कह कर सुबह-ही सुबह, जब वह रोजी पर निकलने का मनसूबा बना रहा था, उसने टंटा करना ठीक नहीं समझा। फिर यह खयाल भी तो था कि चाय की वेला है, अजब नहीं टेऊ को वहीं एक कप मिल जाये बीमारी का घर होने से भला कोई खाना-पीना बंद होता है ?

जब वह भागा के नन्हे से पैर में से घुंघरू फंसा चांदी का तार निकाल रहा था; वह मुदइ की मीठी नींद में मगन थी। एक बार वह तनिक कुनमुनायी पर मंद ब्यार के रेशमी बालों में मुंह छिपा कर फिर सो गयी। सामने खड़ी निहुंग पहाड़ी से सूरज के सरकने के साथ ही उसने आज फिर कुल्फी का सामान जुटा लिया था। चीनी, दूध, बर्फ और नमक तो चांदी का तार रखने से मिल गये थे—जलाऊ लकड़ी की फिर उधार करनी पड़ी थी। दूध तो गरम करना ही है ..चूल्हे के मरभुक्खे मुंह में लकड़िया ठूंस कर उसने नमक की हंडिया से ले कर आटे के रीते कनस्तर तक सब देख डाला पर माचिस न मिली। मिली तो ग्लेक्सो के उस डिब्बे में, जो वह पिछले महीने किसी तरह टेऊ के लिए लाया था और जो अब खाली होने पर तेल लाने के काम आता था। माचिस का एक हिस्सा तेल में सन गया था—फिर भी उसने अंगूठे और उंगली की चिमटी से पकड़ कर उसे निकाला। खोल कर जो देखा तो उसमें दो तीलियां थीं पर मसाला एक के मुंह पर न था। झल्ला कर उसने खोखे को चूल्हे में डाल दिया।

दुलाना की देहरी चढ़ उसने अंगारों के लिए ठिकरी आगे बढ़ायी तो दो हाथ के दुपट्टे को ठोढ़ी तक खींचते हुए एक थकी हुई आवाज ने सवाल किया—फेरी पर निकल रहे हो ? टोपन की सांस भटक गयी है। हालत अच्छी नहीं। अंगारे की ठिकरी थामे एक मुरझाया हुआ गोरा हाथ आगे बढ़ा। उस पर उभरी नीली रगों से उसकी निगाह उलझ गयी फिर ऊपर उठी और गंदे दुपट्टे की बारीक जाली के पाश में तैरती मरी-मरी-सी मछलियों से जा टकरायी। उन्हें देख कर उसे लगा कि 'टोपन अगर दम भी तोड़ दे तो अजब नहीं।' अपने घर की चौखट तक पहुंचते-पहुंचते उसे कई बार खयाल आया—ऐसा हो गया तो ? ऐसा हो सकता है ? बेचारी बूढ़ी लीला, का अकेला बेटा... वह तो ठीक है....पर मैं जो यह सब जुटा चुका हूं . चीनी तो पानी में घोल भी दी है....टोपन गुजर गया तो....नहीं-नहीं टोपन कट्ठा जवान है यूं नहीं जाने का। दो दिन पहले तो ठीक था ही। उसने अगारों के साथ ही नुकसान की आशंका को भी चूल्हे में झोंक दिया। सिलाई मशीन के आसपास पड़ी चिंदियों को लपेट कर अंगारों पर धर दिया और फिर धुकने-सा मुंह फुला कर चूल्हा फूंकने लगा। थोड़ी ही देर में धुआं बल खाता हुआ दीवार पर टिके टीन की ओर बढ़ने लगा। जोर की एक फूंक और

मारी तो सारे घर में धुआं भर गया। उसने आंखें बंद कर लीं। आंख जो खोली तो चूल्हे में से एक हलकी लपट उठती हुई दिखायी दी, वैसी ही उदास और मरी-मरी, जैसी गदे दुपट्टे की जाली में उलझी मछलियों-सी आंखों में उसने देखी थी। उसने फिर जोर से चूल्हा फूंका। अब लपट ऊंची और तेज थी। दूध का भगोना चढ़ाते हुए उसने गांठ बांध ली थी कि दो चुल्लू दूध टेऊ के लिए बचा कर रखना है। तभी उसे पिघलते हुए बर्फ का ध्यान आया। अब वह उसे तप्पड़ में सहेज कर कूटने लगा। न जाने क्यों आज वह ओर-जोर से सट्टा चला रहा था, जैसे कल कुल्फी के गल जाने की जोखिम इसी बर्फ ने दी थी। वह उठा, मिट्टी के घड़े को अच्छी तरह धो कर साफ किया, फिर गीला करके लाल कपड़ा उस पर चढ़ा दिया। घड़े में भरे ठंडे पानी में नमक की डलियां छोड़ कर चूल्हे पर से दूध उतार लिया और ठंडा होने के लिए अलग धर दिया।

अब वह पहले से ही धो कर औंधी रखी छोटी-बड़ी टीन की डिब्बियों को सीधी करके लाइन में जमाने लगा। पांच पैसे वाली, दस वाली, बीस वाली, पचास वाली....? वह है कहां? उसने साब के लिए सवा रुपये तक की रेट टीन की पट्टी पर लिखवा रखी है। वैसे भी आज तक किसी ने उससे बीस पैसे से अधिक की कुल्फी मांगी भी कब?

००० दूध ठंडा हो चुका था। उसने चीनी का घोल उसमें मिला दिया। घुटनों पर हाथ रख कर चट् की आवाज के साथ उठा। मसाले की हंडिया में रखी इलायची के चूरे की पुड़िया ले कर उसने घोल में उलट दी। अब लाइन में रखी डिब्बियों में वह जल्दी-जल्दी घोल डालने लगा। जब सब पूर गयीं तब उसे याद आया, चारका खीर?... चौसरी क्यों। उसके साथ आंखों में भूले 'टेऊ' की दुधमुंही सूरत तैर गयी। औंधा हत्थड़ सर पर मार कर पास धरे साइकिल के ट्यूब के छल्ले डिब्बियों के सिरों पर चढ़ाने लगा। सब पर छल्ले चढ़ गये तो लाल-काली पट्टियां धारे डिब्बियों के जमाव को देख कर उसे ऐसा लगा, जैसे टोपन के घर के बाहर सर पर गमछे धारे कालोनी के लोग जमा हैं। मुंह बांधे इन्हीं की तरह। उसने अपने सर को झटक दिया। जैसे इस विचार को अपने से झाड़ कर अलग कर दिया कि टोपन मर भी सकता है। फिर एक-एक करके डिब्बियों को घड़े के पानी में छोड़ने लगा। डिब्बी के पानी में पैठने के साथ ही वह हिसाब लगाता जा रहा था कि कितने का माल बन गया है। माथे पर चुहचुहाये पसीने की बूंदों को उसने मुड़ी हुई तर्जनी पर समेट कर छिटक दिया।

—अगर शाम तक सब कुल्फियां निकल जायें तो भागा का तार छुड़ा

लेने के बाद भी इतना बच रहेगा कि वह दो जून का आटा-चावल जुटा सकेगा और गुजर जैसी लगड़ाती चली आ रही है चलती रहेगी। कुल्फी के घोल-सा सोंधा और इलायची की खुशबू में लिपटा एक सलोना विचार महक उठा 'मजा तब है जब सत्ती को खबर तक न हो और चांदी का तार भागां के पैर में फिर आ जाये। फिर उसकी आड़ू-सी ठोड़ी पर उभरे तिल को सहलाते हुए बताये कि ⋯' इसके साथ ही सत्ती के चिट्टे बदन की लुनाई उसकी आंखों में उभर आयी और एक फुरहरी-सी उसके सूखे शरीर में लहरा गयी। कान में खुसी अधजली बीड़ी को निकाल कर ओठों में दबाया फिर चिमटी में पकड़ी चिनगारी से उसे छुआ कर उसने जोर का कश खींचा। दो-एक सुट्टे और मारे और कंधे पर रखे गमछे पर कुल्फी के घड़े को जमा कर वह उठने ही वाला था कि कालोनी के नुक्कड़ से बिलखता हुआ स्वर उठा और उसे छेदता हुआ पार निकल गया। कांपते हुए पगों पर खड़े हो कर उसने बाहर झांका तो पूरी कालोनी उसे धुंध के कफन में लिपटी हुई दिखायी दी . तो टोपन गुजर गया। सामने वाली दीवार पर टंगा हथेली पर पहाड़ टिकाये हनुमानजी का चित्र कांपने लगा। उसे लगा, पहाड़ का सारा बोझ उसके कंधे पर आ पड़ा है। अजब नहीं कि आगे बढ़ने पर वह जमीन से सट जाये। फिर भी बजरंगबली को याद करके एक झटके से उठा और देहरी पार कर गया। 'कु-लही....मलाई' एकाएक ही उसके मुंह से निकल पड़ा। उसने जीभ काटी। लानत है ऐसी आदत पर। वह कुढ़ रहा था, मन-ही-मन।

—साईं जेठू....ओ जेठू मल। एक पहचानी हुई आवाज ने उसके बढ़ते हुए पैर को जकड़ लिया।

टोपन गुजरी वयो....सुन्तो वजगो आ ह। साइकिल पर पैर मारता हुआ भट्ट कह रहा था—दाह में जाना है दूर होती हुई आवाज ने फिर कहा—फेरी छोडो।

कालोनी के नुक्कड़ से रोती हुई आवाज के धुएं का पहला गुबार उठा था तभी वह समझ गया था कि 'टोपन' नहीं रहा। ...तुरंत घर से निकल जाना चाहिए, किसी ने देखा तो है नहीं यही सोच कर वह निकल पड़ा था, चुपचाप। यह बात और है कि आदतन उसके मुंह से टेर फूट पड़ी थी . पर अब तो भट्ट ने भी कह दिया है .. बच निकलने का कोई रास्ता नहीं। जात-बिरादरी का मामला ठहरा। इस विचार ने उसे घर की ओर बरबस मोड़ दिया। उसे लगा, जैसे उसके पैर बर्फ में धस कर जम गये हैं। घर के कोने में घड़ा टिका कर वह उठा तो लगा, उसका अंग-अंग टूट कर गिरने लगा है—जैसे कल उसकी जमी जमाई कुल्फी गल कर बिखर गयी थी।

००० टोपन के घर के बाहर लोग जमा थे। आज कोई काम-धंधे पर नहीं निकला था। सबके चेहरे मौत की मार से सटके हुए थे। चारों तरफ चुप्पी चिपकी हुई थी। इशारों से काम हो रहे थे।

सामने जूमल खड़ा था—पिटा-पिटा-सा, जिसे उसने सुबह आलू-छोले उबालते हुए देखा था। उसके माथे पर उसके दिन भर पड़े रह जाने की फिक्र धूल की तरह जमी हुई थी। बगल में दुनाला टूट कर टांगों पर बैठ गया था। उसका बासी सब्जी, पिलपिले टमाटर और मरे-मरे अमरूदों से अटा ठेला उसके दरवाजे पर खड़ा था। स्कूली बच्चों के टिफिन पहुंचाने वाला भूरजा आगे खड़ा घुल रहा था। उसे लगा, जैसे मौत का दरिया 'टोपन' के बांध को तोड़ कर कालोनी में घुस आया है, जिसमें सब लोग डिब्बियों में बंद करके छोड़ दिये गये हैं। थोड़ी देर में सब जम जायेंगे और फिर गल-गल कर बह जायेंगे हमेशा-हमेशा के लिए।

हाथ बांधे सामने खड़े जूमरमल की घड़ी पर उसकी निगाह गयी तो पाया सुई साढ़े दस से आगे निकल गयी थी। अगर बारह-एक बजे तक भी निपट जाये तो ' मैंने बेकार ही फेरी पर निकलने की ठानी '' सुसर जा पुट ''' उसे भी आज और इसी वेला मरना था। मरे हुए को गाली देने पर उसने कान पकड़ा। वह इसी उधेड़ बुन में था कि....'या को राम संग है' के भरे हुए स्वर ने उसे अरथी की ओर धकेल दिया। अरथी उठ चुकी थी। रोने-पीटने की आवाज उसका पीछा कर रही थी। लोगों के कंधों पर चढ़ा जवान टोपन आगे बढ़ रहा था। जब अरथी उसके घर के पास से गुजरी; उसकी आंखों में कुल्फी का घड़ा तैर गया। वह थके पैरों से पीछे चलने लगा। चलते-चलते उसे अपना कंधा हलका लगा, आगे चलने वाले लोगों को छितरा कर उसने अरथी को कंधा लगा दिया। अब शव स्कूल के करीब आ गया था। 'या को राम संग है ' सत बोलो संग है '' राम नाम संग है।' के समवेत स्वर को चीरती हुई अचानक ही एक टेर उठी—'कु लफी '''मलाऽ ''लोग चौंके। पीछे चलते हुए एक आदमी ने आगे बढ़ कर अरथी से उसके हाथ को झटक कर उसे पीछे धकेल दिया और बोला— लख लानत भेणा सब उसे घूर कर देख रहे थे। □ □

जमीन से हटकर

□

हेतु भारद्वाज

जमीन से हटकर

गंगाधर अपने छोटे भाई विद्याधर की चिट्ठी को कई बार पढ़ चुका है। पत्र बहुत छोटा था, मगर उसका एक-एक शब्द उसे भीतर तक कचोट रहा था। विद्याधर ने लिखा था, 'भैया, यदि उचित समझो तो कुछ पैसे भेज दो, ताकि मां को एक बार जयपुर दिखा आऊं। मरना तो उसे है ही, मगर अपना कुछ फर्ज है, इसीलिए आपको लिख रहा हूं।' दसवीं पास विद्याधर ने कितना गहरा, तीखा व्यंग्य उसके प्रति किया है। वह जानता है इन शब्दों को लिखने में विद्याधर को ज्यादा वक्त नहीं लगा होगा। उसने गंगाधर से रुपए भेजने की प्रार्थना नहीं की, प्रत्युत उसे कठघरे में खड़ा कर दिया है! उसे लगा, वह वाकई अपराधी है और विद्याधर के समक्ष बहुत-बहुत छोटा हो गया है। क्या वाकई उसने अपने फर्ज की ओर कभी ध्यान नहीं दिया? उसकी आंखों के सामने बूढ़ी मां का झुर्रियों से भरा चेहरा घूम गया और साकार हो गया एक परिवेश—

फूस का टापरा, ढीली-ढीली खाट पर गन्दी गूदड़ी में लिपटा दुबला पतला बूढ़ा शरीर! टापरे में बेतरतीब संवरे माटी के छोटे-बड़े घड़े। खाट के पास बरोसी में सुलगती आग से उठता धुआं। टापरे के सामने बाड़े मे रम्भाती गाय। हल जोतकर लौटा विद्याधर। गाय और जोर से रम्भाने लगती है।

'कुण? भाया बिदिया?' टापरे से मा की क्षीण आवाज।

'इयार आयो मां,' विद्याधर का मा की खाट के पास पहुंचना, 'कांई हाल छै?'

'के हाल हो स्यो, इब तो रामजी बम उठा....'कराहती मां, 'तेरो क्या हो जातो ...' मां की तेज खांसी ।

'अठै म्हारो ई पेट कोनी भरै क्या कर कुण सो सुख!' एक क्षण की शान्ति भंग करती कहती, 'भाईजी ने कागद घाल्यो छै! किम भेज देते तनै जैपर दिखा ल्याऊं।'

'इब तो मनै रामजी टेर सी !' मा क्रोधित हो उठती। 'मरगो तेरो भायो ! के भेजसी सित्यानासी ? जोरु रो गुलाम !' बूढ़े क्रोध पर खांसी का दबाव ! बाड़े मे गाय का और ज़ोर से रम्भाना ! मा खांसते-खांसते गालियां देती चली जाती...।

००० 'कोई प्रेजेण्ट खरीद लाते, शाम को शर्माजी के यहां चलना है,' पत्नी के स्वर ने उस परिवेश को बिखेर दिया।

ऐं ... .. हां—' गंगाधर ने जैसे सुना ही नही।

'शर्माजी के बच्चे की बर्थ-डे पार्टी है न ! कुछ खरीद लाओ', पत्नी ने जैसे उसे जगाया।

'क्या वहां चलना जरूरी है ?' उसने धीरे-से पूछा।

'क्या तुम्हें उन्होंने इन्वाइट नही किया ?' पत्नी ने गुस्से मे पूछा।

'सो तो ठीक है " मगर उनसे अपने सम्बन्ध"" ?'

'सम्बन्ध ? वो तो बनाने से बनते हैं। आने-जाने से बनते हैं। थोड़ा बहुत खर्च तो करना ही पड़ता है। तुम अपनी खोली में बैठे रहो, कौन पूछेगा ?' पत्नी ने तुनककर कहा।

'वो कोई बात नही......। मैं सोच रहा था, मा बीमार है, कुछ भेज देता', गंगाधर का स्वर क्षीण था। पत्नी भभक पड़ी, 'अरे, तो बाबा, किसने मना किया ? भेज दो। चाहे अपना खर्च न चले, पर उनको भेजो।'

गंगाधर सहम गया। पत्नी रसोई मे चली गई। वह यों ही थका-सा पड़ा रहा.......।

दरअसल गलती उसी की रही, वर्ना विद्याधर दसवीं पास करने के बाद खेती के काम में ही न खटता। खेती भी क्या ? बस नाम भर को। वह तो पुराना कुआं है, जिसके सहारे कुछ पैदा हो जाता है। विद्याधर ने उससे कई बार कहा कि कुएं की मरम्मत करा दे और उस पर बिजली लगवा दे। मगर उसने विद्याधर की कोई सहायता नहीं की है। उसने मा और विद्याधर को असहाय अवस्था में छोड़ दिया। पिता पोस्टमैन थे, जो कुछ उन्हें मिलता था, उसकी पढ़ाई में खर्च हो जाता था। बीमा-वगैरह से कर्ज लेकर उसका विवाह किया। पिता सोचते थे कि उसे नौकरी मिलते ही सब कुछ ठीक हो जाएगा, घर मे पैसों की वर्षा

होने लगेगी, नया मकान बन जाएगा, खेत पर कुएं की मरम्मत हो जाएगी और........। पिता के जीते जी उसे नौकरी तो मिल गई थी, मगर शेष साधों को अधूरी लेकर बेचारे असमय ही चल बसे थे। वह आर. ए. एस. प्रतियोगिता में चुना गया, इसलिए नौकरी तो उसे बढ़िया ही मिली। मगर सारी दिक्कतें भी यहीं से शुरू हुई।

अफसर बनते ही उसे 'विशिष्ट-वर्ग' के लोगों के साथ रहने का हक हासिल हुआ। इससे पूर्व तो पेट भरने, तन ढकने की सुविधाएं ही उसे मिल सकी थी। मगर अफसर बनने पर उसने अनुभव किया कि बिना 'स्टैण्डर्ड मेण्टेन' किए वह अपना 'स्टेटस' कायम नहीं रख सकता। जब वह ओ. टी. एस. के प्रशिक्षण में आबू गया था तो उसके पास न तो ढंग का सूटकेस था और न बिस्तर ही। कपड़े भी बस जैसे-तैसे थे। यद्यपि इस प्रतियोगिता में योग्यता-सूची में उसका प्रथम स्थान रहा था, मगर उसके रहन-सहन के साधनों ने उसे सबसे नीचे धकेल दिया था। वह सभी प्रशिक्षार्थियों के उपहास का साधन बन गया था, उसका नाम 'कूड़ीधर' रख लिया गया था। वह प्रशिक्षण के दौरान सहमा सहमा-सा रहा था। वहीं उसके मन में यह बात जम गई थी कि बाहरी टीम-टाम की ही कीमत है। उसके बिना आदमी की अन्य योग्यताओं की भी वकत नहीं हो पाती। इसलिए उसने तय कर लिया कि सबसे पहले वह अपने रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाएगा। और वह भूल गया कि उसके पिता ने उससे कुछ आशाएं लगा रखी है, उसकी बूढी मां सपने देखती है कि 'गंगाधर की नौकरी लगने के बाद वैने टापरो गोवर माटी सूं लीपणो कोनी पड़सी', और विद्याधर भी एक अफसर के भाई की तरह आगे बढने की योजनाएं बना रहा है।

उसने पिता को पहला झटका तब दिया, जब उसने अपनी पसन्द की लड़की से शादी करने का निर्णय लिया। प्रशिक्षण के पश्चात उसकी पहली नियुक्ति बीकानेर हुई और वहीं उसने एक लड़की को पसन्द कर लिया था। जाहिरा-तौर पर इस सिलसिले में न तो मां ने कुछ कहा था, न पिता ने। इसके विपरीत उन्होंने तो गांववालों से रोब के साथ कहा था, 'भई, म्हारो जमानो तो गियो। हाकम री भू गावड़ली छोरी कोई ठीक रैती।' मगर उसे स्पष्ट हो गया था कि उसके निर्णय से भीतर-ही-भीतर दोनों दुखी थे।

वे और ज्यादा दुखी तो इसलिए हुए थे कि उसने शादी गांव से नहीं की थी। वह मां-पिता और विद्याधर को बीकानेर ले गया था। गांव के कुछ लोगों को उन्होंने निमन्त्रण अवश्य दिया था, मगर उस निमन्त्रण का कोई अर्थ

नहीं था। जैसे पिता का सारा उत्साह ठण्डा पड गया था। शादी के लिए बीमे आदि में कर्ज ली रकम उन्होंने उसे ही सौंप दी थी, और वह शादी का सारा सामान खुद ही खरीद कर लाया था। जब उसने अपनी पत्नी के लिए लाई साड़ियां मा-बाप को दिखाई थी, तो दोनो ने ही उनकी खूब तारीफ की थी। मा ने दबी जबान से कहा था, 'भाया काम करयोडो चूनड़ो एकी कोनी ल्याओ। सूण को एक लुगड़ो तो चाइजै। घर के चूडलो.... ।'

तो पिता ने मा को झिडक दिया था, 'के बावड़ी बात करै छै, इब लूगड़ो कुण पैरे छै।' और कढी हुई चुनडी वह नही ही लाया था। उसी दौरान एक दिन पिता ने उससे कहा था, 'आदमी कठे बी पूग जा पण बैंने आपणी जमीन पै पैर टिकणो नी भूलणो चाइजै... । तन तो बेरो मै क गान्धीजी रॉण्ड-टेबिल के टेम इंगलिस्तान रा राजा सूं धोती ई पैण मिल्या। वां वठैवी अपनी जमीन नई छोड़ी।' उस वक्त उसने पिता की इस बात को कुढकर टाल दिया था ....।

मगर आज इन बातो का गहरा अर्थ उसकी समझ में आने लगा है। उसे आश्चर्य होता है कि गांव के सीधे-सादे पोस्टमैन में तीखा व्यंग्य करने का कितना माद्दा था। उसकी शादी के कुछ दिन बाद ही उसके पिता गुजर गए थे। शादी के सारे माहौल के दौरान वह बहुत उदास थे। आज वह स्वीकार करता है कि उसके व्यवहार और जिन्दगी के प्रति उसके खोखले रवैये ने पिता को भीतर से आहत कर दिया था। इसलिए वह असमय ही चल बसे थे। उसने तो जिन्दगी को एक अलग ही दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की जहां 'स्टेटस' 'स्टैण्डर्ड' 'कॉटिसी'-जैसे कुछ शब्दो की भीड मे जीवन बंध जाता। इन्ही मे बंधकर वह अपनी जमीन छोड चुका था।

जब वह आर. ए. एस. मे चुना गया था तब सारे गांव के लोगों ने खुशी मनाई थी कि गाव का एक आदमी तो 'बड़ा' बना, अब गांव की दिक्कतें मिट जाएगी। मगर उसने तो गाव की ओर मुड कर भी नही देखा। जब भी गांव गया लोगों से बहुत कम बातचीत करता। उसने जान बूझ कर अपने को गांव वालो से अलग कर लिया था। उसे याद है कि एक बार होली पर वह गांव मे था। उसके हम-उम्र लोग उससे होली खेलने आए थे, उसके लिए खास-तौर से रंग-गुलाल लाए थे। मगर उसने सबको बुरी तरह फटकार दिया था। लौटते लोगों में से एक ने फबती कसी थी, 'चालो रे, होली तो मिनखा रो त्योहार मैं। अठे तो हाकम रो ठिकाणों मैं।' वह चुप रहा था, पूरे गुस्से मे। इसीलिए गांव वालो ने उसे कोई सम्मान नही दिया। वह भी तो उनसे घृणा ही करता था, क्योंकि उसके पैरो मे तो 'विशिष्ट-वर्ग' के पंख लग गए थे। विवाह के बाद

उड़ने वाले दो हो गए थे और दोनों ने ही पीछे और नीचे की ओर देखना छोड़ दिया था। उनके लिए तो बस क्लब था, पार्टियां थीं, पिकनिक पार्टियां थीं, शिष्टाचार के नए तौर तरीके थे और ! ब्रिज, तथा 'हाउजी' जैसे खेल थे। इसी उड़ान में उनके घर नई क्राकरी, रेडियोग्राम, कुकर, सोफा, कूलर-जैसी चीजें बढ़ती जा रही थीं।

पिछले माह ही उसने डाइनिंग-टेबिल और कुर्सियों का सैट बनवाया था। घर में फर्नीचर तो पहले से ही काफी था, मगर इनका अभाव खटकता था, क्योंकि उसके 'सर्किल' में सभी के घर इनसे सजे थे। अब उनकी नजर फ्रिज पर थी। उसकी पत्नी को फ्रिज के मामले में कई बार अपमानित होना पड़ा है। स्कूटर बुक करा रखा है. चाहता है, उसे जल्दी ही मिल जाए ! साइकिल पर जाते हुए उसे बड़ा बुरा लगता है।

आज अतिरिक्त-जिलाधीश शर्मा के लड़के का जन्म-दिन है। पार्टी तो बहाना है। वहां उपहारों की प्रतियोगिता होगी। कल सारे अफसर सपरिवार पिकनिक पर जाएंगे —राजसमन्द। वहां साड़ियों की नुमाइश होगी।

और इसी जिन्दगी के अनुरूप स्वयं को ढालने के चक्कर में वह भूल गया कि वह एक गांव में जन्मा है, फूस के टापरे मे काला धुआ फेंकती ढिबरी की रोशनी में पढ़ा है, रेत के धोरे पर रातों को सोया है, लम्बे अर्से तक उसने रोज सुबह छाछ और सूखी रोटी का नाश्ता किया है। जब भी विद्याधर का पत्र आता है, उसे अहसास होता है कि उसकी बूढ़ी मा और विद्याधर उसी टापरे में दिन काट रहे हैं, ढिबरी की कालिख अब भी उस झोपड़ी में फैल रही है, विद्याधर अब भी छाछ और ठण्डी सूखी रोटी का नाश्ता कर रहा है, धूल भरी गर्म लू वे लोग अब भी उसी टापरे में झेल रहे हैं। जब भी उससे उसके निवास का नाम पूछा जाता है, वह कहता है— काछेरा। मगर मानसिक रूप से वह कभी का काछेरा से अलग हो चुका है। उसे यह भी अहसास होता है कि अब वह कहीं का नहीं रह गया।

उसकी गलती यही रही कि उसने अपने मस्तिष्क में एक अलग दुनिया का नक्शा बना लिया। इसी नक्शे में रंग भरने के फेर में वह अपनी जमीन छोड़ता चला गया। नई दुनिया के नक्शे में रंग भरते समय वह अनेक मूर्खताओं का शिकार हुआ है। अब तो इन मूर्खताओं को याद कर उसे खुद से ग्लानि होने लगती है। उसे याद है कि एक दिन क्लब में वह साथी-अफसरों के साथ बैठा था। तब उसने अफसरी नई-नई ओढ़ी थी। सौन्दर्य प्रसाधनों की कीमतों पर बातें

चल रही थी। उसके मुह से निकल गया था, 'टेल्कम पाउडर जैसी जरूरी आवश्यकता की चीज भी कितनी महगी हो गई है !'

'तो क्या आप पाउडर को निसेसिटी मानते हैं मिस्टर गंगाधर।' एक साथी अफसर ने व्यग्य के साथ पूछा था।

'और नही तो क्या ?' उसने दृढ़ता से कह दिया था।

उसकी इस धारणा का लोगों ने खूब मजाक उड़ाया था। बात बहुत छोटी थी, मगर उसकी मूर्खता को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त थी। उसकी इस रंगीन दुनिया का इतिहास ऐसी ही मूर्खताओ का इतिहास है, क्योकि उसके पैरों के नीचे कोई जमीन नही रह गई है। वह बहुत चाहता है कि अपनी जिन्दगी नए सिरे से शुरू करे। मगर कुछ तो पत्नी का दवाब और ज्यादा उसकी खुद की कमजोरी। वह उन चीजो के पीछे भटकता रहता है, जिनका जीवन की उपलब्धियों से दूर का भी रिश्ता नही।

'तो बाजार कब जा रहे हो ?' पत्नी ने उसका स्वर भंग कर दिया।

'हां .. S....अभी जाता हूं। क्या ले आऊं ?'

'बीस पच्चीस की कोई अच्छी-सी चीज देख लाना।'

'ठीक है ले आता हूं,' वह कपड़े पहनने लगा, 'लाओ कुछ पैसे दे दो।'

रुपए देते हुए पत्नी बोली, 'और ऐसा करना, 'सपना वस्त्र-भण्डार' जा कर एक शाल लेते आना। कलेजी रंग का है। मैं उसे अलग रखा आई थी।'

'शालें तुम्हारे पास नही हैं क्या ?'

हैं तो, पर कल पिकनिक पर चलना है। और शालें तो सबकी देखी हुई हैं। पत्नी ने समझाया। वह कुछ नही बोला, 'तुम ले आना पसन्द न आए तो वापस लौटा देंगे।'

पत्नी ने उसका वजन हल्का करना चाहा। मगर वह जानता है कि पसन्द न आने पर लौटा देने की शर्त पर अनेक वस्तुएं आई हैं। मगर लौटी आज तक एक भी नही।

वह चला गया मगर उसकी चेतना में विद्याधर का पत्र घूम रहा था।

००० बाजार से लौटा तो क्वार्टर के बाहर ही तार वाला डाकिया मिल गया। उसने रसीद पर हस्ताक्षर कर तार ले लिया। खोल कर पढ़ा— 'मदर एक्सपायर्ड, विद्याधर।'

गंगाधर की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। पत्नी ने दरवाजा खोला। उसके हाथ से शाल और उपहार के पॉकेट नीचे गिर पड़े। उसने तार पत्नी की ओर बढ़ा दिया। उसे लगा, उसके पैरों के नीचे जमीन नहीं है, वह हवा में भूल रहा है। □ □

प्रतिक्रियाएं



रामदेव आचार्य

प्रतिक्रियाएं

साधारण तथ्य यह है कि इकतालिस वर्ष की आयु वाले अध्यापक रामभरोसे की, बीमारी के बाद, मृत्यु हो गई। उसकी मौत पर कुछ प्रतिक्रियाएं हुईं; जो इस प्रकार हैं:—

लक्ष्मी : पत्नी : उम्र छत्तीस वर्ष

समझ में नहीं आता, घरवालों ने क्या सोचकर मेरा नाम लक्ष्मी रखा। न मैं मां-बाप के घर लक्ष्मी सिद्ध हुई, न ससुराल में। कितना अच्छा होता, यदि मेरा नाम विपदा या अभागिन होता। सही नाम रखने की इस समाज में प्रथा नहीं है। यहां झूठ सच्चाई है, सच्चाई झूठ है। पैदा होने के दो वर्ष बाद मां चल बसी। किसी आंचल में मुंह ढंककर चुपचाप मन हल्का कर लेने का सहारा भी नहीं रहा। पिता मुझे अपना दुर्भाग्य मानते रहे, और दुर्भाग्य की तरह ही मेरे साथ व्यवहार करते रहे। उनकी नफ़रत आज भी मेरे मन में कांटे की तरह चुभी हुई है। कभी-कभी पिताजी खीझ कर कह भी देते — लक्ष्मी ! तू आयी और सरस्वती गयी। सरस्वती मेरी मां का नाम था। लक्ष्मी और सरस्वती का बैर वैसे भी प्रसिद्ध ही है। पिताजी के ऐसे वाक्य बिजली की तरंग की तरह मेरे शरीर में सिहरन छोड़ देते। सोचती- लक्ष्मी ! तू सरस्वती को खा गयी। बाप को यह सुख दिया तूने !

इसी हीन भावना के साथ बचपन बीता। बापू चाय-बीड़ी-सिगरेट बेचते थे ! फिर भी दसवीं क्लास तक पढ़ा दिया। बड़ा भाई रामू शहर छोड़कर गया तो आज तक नहीं लौटा। एक दिन चोरी करने पर बापू ने उसे बुरी तरह पीटा था। फिर बापू रामू के गम में घुलते-घुलते चल बसे। रहा सहा सहारा भी टूट गया ! एक दिन आकर एक दूर के चाचा मुझे ले गये। चाची नौकरानी की तरह काम करवाती रहीं। दो जून ठण्डा-बासी खाकर काया को किराया चुकाती रही। एक दिन चाची के बाहर जाने पर चाचा ने मुझे कमरे में बुलाया और हड़प लिया। मैं चीखती रही, पर चाचा पर भूत सवार था। उस दिन

के बाद चाचा मेरा खास खयाल रखते रहे। मेरे कपड़े बदल गये। छोटी-मोटी फरमाइशें पूरी होती रही। मौके बेमौके जिस्म कलंकित होता रहा।

चाची अनुभवी औरत थी। हकीकत को ताड़ गयी। एक दिन अकेले में मेरा गला दबोच लिया। ठाड-चूड़ैल की भाषा में मुझे गालियां दी। चाची के भय से मैं सच्चाई नहीं छिपा सकी। उस दिन से ही चाचा चाची के बीच अनबन हो गयी। तनाव बढ़ने लगे। टूटने की नौबत आ गयी। चाची मुझे अपना दुर्भाग्य मानने लगी। उसका सुहाग उजड़ रहा था। चाची को कैसे समझाती कि अपराधी मैं नहीं हूं। गलत समय है, जिसने मुझे लाज बचाने का मौका भी नहीं दिया। अब चाचा भी मुझसे दूर भागते रहे। मेरे जिस्म मे आग लगाकर उन्होंने भी किनारा कर लिया। गम में घुलती रही। न दिन में चैन रहा, न रात में। जिस्म सग पाने को तड़पने लगा, देह माघी धूप सहकर झुलसती रही। गदे मैले कपड़े अंग ढंकते रहे।

आखिर चाची ने ही मेरी सुधि ली। वे मुझे अपने घर के लिये अभिशाप मानती थी। सौत की तरह मुझसे जहरीला व्यवहार करती थी। आखिर एक दिन उन्होंने मुझे हमेशा के लिए विदा कर दिया। पता नहीं, कैसे उन्होंने मेरी शादी की बात तय कर ली। जब विदाई हुई तो चाची ने केवल एक बात कही — 'अपनी नीच सूरत फिर मुझे मत दिखाना'। मैं क्या कहती। आखों में कुछ पिघल गया। आकाश को ताकने लगी। चाचा आखिरी मौके पर आये। मेरे सिर पर हाथ फेरा और गरदन झुका ली। उनकी आंखों में अपराधी-भाव था। संयम रखने की कोशिश की, पर ढह पड़े। मेरा बांध भी टूट गया। हिचक-हिचक कर रो पड़ी। चाचा ने भी केवल एक ही बात कही — बेटी! इस बूढे के कमीनेपन को माफ कर देना। मेरी मत मारी गयी थी। चाची हम दोनो को खूनी आखों से घूरती रहीं।

बारात वाले इन्हे विदा के सच्चे आंसू समझ रहे थे। उन्हें हकीकतो का क्या पता था। वे इसे विदाई की करुणा समझ रहे थे।

ससुराल में आकर मैंने चैन की सांस ली। सोचा — अब गम की यात्रा समाप्त हुई। अब तो सांस लेने का अवसर मिलेगा। पर दुर्भाग्य अभी भी पर्दे मे खड़ा मुझ पर मुस्कुरा रहा था। श्वसुर मुझे बेटी का दर्जा देना चाहते थे, पर एक ट्रक-दुर्घटना में शादी के तीसरे दिन ही चल बसे। घर में कुहराम मच गया। सास की प्यार भरी नजरों में जहर फैल गया। लक्ष्मी एक बार फिर दुर्भाग्य घोषित कर दी गयी। घर में पांव रखते ही श्वसुर को खा गयी।

सास ने फिर कभी मुझे अच्छी नजरों से नही देखा। जब-जब मैंने उनकी सेवा करनी चाही, उन्होंने मुझे अपने पास से भगा दिया। उधर पीहर मे एक ही सहारा था — चाचा का। मेरी शादी के बाद चाची उन्हें हमेशा के लिए छोड़ गयी। वे एक मन्दिर में जाकर विधवा की तरह रहने लगी। उन्होंने जिन्दगी में चाचा को कभी माफ़ नही किया।

सास रोज तानें देती रहती। मायके वालों को भिखमंगा कहती। वे सच्ची थी मेरे पीहर नाम की कोई जगह ही नही थी। तीज त्योहार पर भी कोई याद करने वाला नहीं था। राखी के धागे पहले ही टूट चुके थे। सोचती हूं — भगवान ने मुझे क्यो पैदा किया। क्या मेरा जन्म मौत तक दुर्घटना ही बना रहेगा? थोड़ा-बहुत प्यार दिया इन्होने, पर बाप की मौत का अंजाम भी मुझे ही मानते रहे। घर की बहू होकर भी रहम पर पलने वाली मैं एक नौकरानी रही। जीभ से कभी बोल नहीं फूटा। त्योहार में कभी उमंग नही देखी। जो खाने ओढ़ने को मिलता, उसे विधाता का प्रसाद मानकर शरीर को पालती रही।

आखिर मेरी कोख से भी अंकुर फूटा। सास की नजरें फिरी। मैंने समझा — अब तो जिन्दगी में कुछ नया मोड आयेगा। पर मेरा जन्म तो एक दुर्घटना था, जिसे विधाता ने गलती से औरत का नाम दे दिया था। मैंने मरे हुए बेटे को जन्म दिया। सास ने क्रोध भरी फटकार के साथ मुझे 'डाइन' कहा। तब से आज तक कह रही है। इसके बाद एक के बाद एक चार संतान हुई। एक मरा लड़का, एक लड़की एक वर्ष की होकर मरी, फिर एक मरा लड़का, और फिर एक लड़की, जो पाच महीनों तक जिन्दा रही। हर बार शरीर से टूट कर मैं सास के तानें सुनती रही। जली-कटी सुनने की अब आदत हो गयी थी। ये भी मेरे प्रति उदासीन ही रहे। बच्चो की मौत का दायित्व मुझ पर ही लादा जाता रहा।

इधर इन्होने स्कूल में अध्यापकी कर ली थी। श्वसुरजी, जो थोड़ा बहुत छोड़ गए थे, अब खत्म हो चला था। नौकरी पाकर इन्होने थोड़ा प्यार दिया। मैं जन्म-जन्म की प्यासी थोड़े से प्यार से भी लहलहा उठी। मेरे दिन फिरे। मन्दिर में जाकर प्रभु के सामने साष्टाग लेट गयी। आंखें रोती रहीं, मन हंसता रहा। आखिर रेणु का जन्म हुआ। उस समय मैं सत्ताइस की हो चली थी। भगवान की कृपा से रेणु जिन्दा रही। ये भी रेणु से खेलने लगे। मैं सुबह शाम मन्दिर जाने लगी। रेणु के बाद राकेश भी आ गया। इस बार जिन्दा बेटा हुआ। भगवान

करे, अभागिन का बेटा जुग-जुग जिये। बेटे के जन्म से मेरी कद्र और भी बढ़ गयी। इनको नौकरी में भी तरक्की मिली। सास अब मुझसे सेवा भी कराने लगी।

और जब मेरा सितारा बुलन्दी पर आने लगा, तो वाम विधाता को मेरा सुख खलने लगा। ३५ वर्ष की उम्र में मैंने पाया कि मेरा एक मात्र सहारा, मेरा सुहाग खतरे में है। परिवार का भार सभालने में ये जी-तोड परिश्रम कर रहे थे। मुझे पता नही था कि इनका शरीर भीतर-ही-भीतर टूट रहा है। ये इतने चुप रहते थे कि इनके मन का कुछ भी पता नही चलता था। ये घुलते गये, घुलते गये। आखिर जब बीमारी काबू से बाहर हो गयी तो वह इनके मन की दीवारो को तोड़ कर शरीर पर फैल गयी। एक दिन बेहोशी की हालत में इन्हे स्कूल से अस्पताल पहुँचा दिया गया। सूचना मिलने पर भागी-भागी अस्पताल गयी। भगवान के भी कई चक्कर लगाये। हर पवित्र स्थान पर जाकर अपने सुहाग की भीख मागी। पर विधाता मेरी भीख पर नही पसीजे। ये जिन्दगी की बाजी हारते गये। मेरे मन पर पत्थर गिरते रहे। और आखिर वह आखिरी मुकाम भी आ पहुचा। हे भगवान ! कैसे कहूँ वह सब कुछ — — —। इतना ही काफी है कि मैंने अपने-आप को एक जिन्दा लाश पाया। समझ मे नही आता यह सब क्या हो गया। सास पचहत्तर की हो गयी हैं। रेणु नौ की है, राकेश भी सात वर्ष का हो रहा है। क्या जवाब दूं इन सब को ? मां मुझसे अपना बेटा मागती है। बच्चे पापा मांगते हैं। मैं किसी से क्या मांगूं ? इस विधवा शरीर को लेकर कहां जाऊं। हे भगवान ! तूने जन्म-जन्म के पाप मेरे ही माथे क्यो मढ़ दिये ? इतनी बडी दुनिया में मेरे अलावा क्या तुझे कोई पापी नजर नही आया ?

जानकी : माँ : उम्र पचहत्तर वर्ष

देवी-देवताओं की लाख मनौतियां की, तब जिया मेरा लाल। कितने लाड़-प्यार से इसे पाला-पोसा ! इसकी हर बात को अपने रंगत से सींचा। बाप तो बेटे पर जान ही छिड़के था। खून-पसीना एक किया भरोसे के भरोसे। पढाया-लिखाया और सोचा कि बड़ा होकर सुध लेगा हमारी। बुढापे की लकड़ी होगा, हारे-थके बदन का हकदार। इसने जो खाया, खिलाया; जो पिया पिलाया। एक बार तो अपनी साइकिल बेचकर भरोसे को घड़ी लाकर दी बाप ने। बेटा अड़ गया जिद पर। पहनूं तो घड़ी पहनूं नही तो खाना-पीना बन्द। भूख हड़ताल। भरोसे बाप की आख का नूर। जी—जान से प्यारा। खुद तीन मील पैदल दफ्तर जाना मजूर, पर भरोसे का हठ पूरा किया।

वो भी क्या जमाना था। छोटी-सी गिरस्ती, सारे सुख। बेटा चन्दरमा की

कला तरह बढ़े था। भगवान से कहती–जैसे हमारी सुनी, सबकी सुनना परभूजी। इमतिहान तो पास करता ही गया भरोसे। मैंने थाल भर-भर मिठाइया बाटी हर वार। त्योहार की तरह मनायी इसकी सालगिरे। मुझे क्या पता था कि भरोसे बुढापे में धोखा देगा। भरोसे क्या भसम हुआ, मेरा तो भरोसा ही भसम हो गया।

क्या करता बिचारा! कुलच्छनी जो पल्ले बंध गयी। सत्यानास जाय खसमखानी इसकी चाची का। यह ढोल मेरे गले बांध गयी। जब से घर में पग रखा, मेरी बगिया ही उजाड़ दी। पग धरते ही खाया ससुर को। अंगारा रख दिया मेरे सीने पर। घाव डाल दिया भरोसे के जिगर मे। फिर ओलाद जनी तो ऐसी कि या तो जनना और मरना साथ-साथ होवे या मौत जनम के पीछे भागे। बिचारा भरोसे तरस-तरस गया औलाद का मुख देखने। यहां तो दाई और अरथी साथ-साथ आवें। आखर मैंने ही परसाद बोला बालाजी के। गुरु मराज की भसम लगाई रेणु के बदन में। पचास जतर-मंतर किया। झाडा टोटका किया। तब जाकर जीवी मेरी रेणू। इस कुलच्छनी का तो साया ही भक्सक। और जब बेटा औलाद की खुसी मे रमा तो यह चुडैल खसम पर ही झपट्टा मार गयी। हे परभू! यह धरती क्यों नहीं फटी उस दिन। ऐसा तेरा क्या बिगाडा था दीनानाथ के यह दिन दिखाया। भरोसे की जगे मुझे ही बुला लेना था मेरे अंतर्जामी।

नाम तो लिछमी, चाल कुचाल। कहां जावेगी यह। इसके कोई आगे न पीछे। परभू! ऐसे-ऐसे पिराणी क्यों पैदा किये। ये न तो खुद सुख से जीवें, न दूसरो को जीने दें।

पर यह भी क्या करे विचारी। विधाता ने इसकी किसमत पर काली स्याही ही पोत दी है। बाप न माँ न भाई। न यहां गत, न वहां गत। धरम-करम भी किया आफत की मारी ने, पर इसके तो भाग में भरा था गोबर ही गोबर। इसे कैसे मिलता सुख। औलाद जीवी, तो धनी मर गया। धनी जिया तो औलाद ना रही। यह तो रही बंजर की बंजर। अब कैसे पालेगी मेरी रेणी को? कैसे बढेगा मेरा मोती– मूगा राकेस? हे परभू! इस दुखियारी की भी सुन लेता तो तेरा क्या घट जाता!

अब मेरी भी आँख पसीज गयी। आखिर तो माँ का मन है मेरा। संतान का दुख कैसे देखा जाय। अब भरोसे के कागद– पतर खोजती फिरै है। मैं पूछू क्या बनेगा हजार-डेढ हजार से। अरे तू अपनी उमर कैसे गुजारेगी इन

कागदों से। मैं तो पका आम हूँ। आज नहीं तो कल मिट्टी में मिल जाऊँगी। तू इस विधवा रूप को लेकर कहां-कहां डोलेगी। कैसे पालेगी मेरे लाड़लो को– इन चाद तारों को। अब मेरी तो यही विनती है परभू कि अब तो इस दुखियारी की भी सुन। भरोसे तो गया सो गया। उस देस जो गया वो क्या लौटेगा ? मेरी भी सुध ले मेरे स्वामी। अब तो जी भर गया तेरे जगत से। रहना नहीं देस विराना है मेरे परभू। अगर कहीं तेरा दरबार है तो मेरी इत्ती बिनती तो सुन कि मेरी रेणी और मेरा राकेस जुग-जुग जीवें और इस जनम–दुखियारी का कलेजा ठण्डा करें। अब बुढ़ापे मे क्या कोसूं इस परजाई को। भगवान तेरा सताप हरे बहू। मेरी तो यही आसीस–यही बिनती।

रेणु : बेटी : उम्र नौ वर्ष

सब कहते हैं कि बापू पराये देस चले गये है, जहा से कभी नहीं लौटेंगे। तो फिर मुझे टाफिया, किताबें और कॉपियां कौन दिलायेगा ? सुबह-सुबह बाजार कौन ले जायगा ? जग्गू की जलेबियां कौन दिलायेगा ? मम्मी से पूछती हूँ, तो जवाब ही नहीं देती। मम्मी बोलती क्यों नहीं। आंखें सूनी-सूनी दिखती है। अच्छे कपडे भी नहीं पहनती। आजकल मन्दिर भी नहीं जाती। मेरे कपड़े भी समय पर नहीं धोती। बहनजी स्कूल मे डांटती हैं। मम्मी ध्यान ही नहीं देती। कितनी बार भगवान से कहा– हमारे बापू को क्यों बुला लिया, पर कोई जवाब नहीं। फिर भगवान बालकों के कैसे हुए। हिन्दी–टीचर एकदम गलत पढ़ाती हैं।

दादी सुबह-शाम-दोपहर रोती रहती है। आखें है कि झरने। हरदम परभू-परभू करती रहती हैं। मुझे जोर से छाती से चिपटा लेती हैं। इतना भींचती हैं कि मेरी तो जान निकल जाती है। और लोग कहते है कि बूढों मे ताकत नहीं होती।

तो क्या सचमुच बापू अब नहीं आयेंगे। फिर हमे कपड़े कौन दिलायेगा ? गुड्डी कौन खिलायेगा। नीलम कैसे-कैसे चमकीले कपडे पहनकर आती है। मेरे कपड़ों पर हंसती है। मम्मी को कहती हूँ तो होंठ काटने लगती हैं। बापू तो फौरन दुकान पर ले जाते थे। यह ले लो रेणु, यह ले लो बेटी ! कितना प्यार करते थे।

आज मैं हेड– बहन जी से पूछूंगी– क्या मेरे बापू सचमुच नहीं आयेंगे ? बापू। तुम इतने नाराज क्यों हो गये। अच्छा, अब तुम आ जाओ मैं कुछ भी नहीं मागूंगी। तुम्हें कभी परेशान नहीं करूंगी। भइया से भी नहीं झगड़ूंगी।

भइया पीटेगा तो भी नही बोलूंगी। तुम तो कितने अच्छे थे बापू! हमसे इतने क्यों रूठ गये?

हैड-बहिन जी आजकल सिर पर हाथ क्यो फेरती हैं? पहले तो नही फेरती थीं। बात भी नहीं करती थीं।

पता नहीं– सभी लोग क्यों बदल गये! बापू भी बदल गये। एक दिन भी प्यार किये बिना नही रहते थे। अब इतने दिन हुए, हमें याद भी नही करते। चिट्ठी भी नहीं लिखते!

जब मैंने अम्मी से कहा– मैं भी बापू के देश जाऊंगी। उन्हें मनाकर लाऊंगी। अम्मी ने मेरा मुंह बन्द कर दिया। मेरे मुंह पर हाथ रख दिया। वह कितना ही मना करें, मैं जाऊंगी जरूर। यह भी कोई बात हुई कि रूठ गये और कोई मनाये भी नही। बापू तो सबको मनाते थे। सबको राजी रखते थे।

मैं अभी दादी से जाकर कहती हूं। मैं अब जरूर बापू को मनाने जाऊंगी। देखें, कैसे कोई रोकता है। मैं दादी की परवाह ही नहीं करूंगी। मन्दिर के बाबा से बापू के देश का पता पूछ लूंगी। हां, यह ठीक है। बाबा सब जानते हैं। सभी लोग बाबा से ही पूछते हैं। मैं भी बाबा के पास ही जाऊंगी। वे सब बता देंगे। बस ठीक है। मैं बाबा से ही पूछ लेती हूं।

राकेश : बेटा : उम्र सात वर्ष

आखिर पापा कहां गये? अम्मी कहती है तेरे लिए छोटी साइकिल लेने गये हैं। साइकिल लाने में इतनी देरी थोड़े ही करते हैं। अम्मी हमको बुद्धू बनाती हैं। आजकल दूध भी नही देती। यह अम्मी को क्या हो गया है। हर वक्त उदास रहती है। कभी हंसती भी नही। पहले तो हंसती थी। रोज कंघी करती थीं। अब मैले कपड़े ही रखती हैं। धोती भी नहीं। मीनू कहती थी, तेरे पापा मर गये। झूठी कहीं की। दादी कहती है— पापा भगवान के देस गये हैं। अम्मी कहती हैं— तेरी साइकिल लेने गये हैं। सब हमे बुद्धू बनाते हैं।

जब पापा घोड़ा बनते थे, मैं सवार, तो कितना मजा आता था। अब तो वह मजा ही नही रहा। जाने पापा कब आयेंगे। दादी हर वक्त रोती क्यो हैं? अम्मी चुपचाप क्यों रहने लगी? आखिर इनको क्या हो गया?

आजकल कोई पैसे भी नहीं देता। पापा तो रोज देते थे। ये सब

लोग कंजूस हैं। मेरे लिए बिस्किट भी नहीं लाते। मैं भी बड़ा होकर इनको कुछ नहीं दूंगा। केवल पापा को अच्छी-अच्छी चीजें दूंगा! आने दो पापा को– इन सबकी शिकायत करूंगा। पापा नाराज होंगे। तब पता चलेगा इनको। चलूं, अभी तो बाहर चलूं। लड़के राजा-चोर-सिपाही खेल रहे हैं। हम भी खेलेंगे। आज मैं सिपाही बनूंगा।

चंद आवाजें : हम उम्र– दोस्त

एक आवाज	:	यार रामभरोसे भी क्या आदमी था!
दूसरी आवाज	:	शांत और गम्भीर।
तीसरी आवाज	:	भीतर-भीतर टूटता गया, पर जुबान से 'उफ' भी नहीं किया।
चौथी आवाज	:	किसको कहता बेचारा? यहां सुनता ही कौन है? लोग खिल्ली उड़ाते हैं।
पहली आवाज	:	दो छोटे-छोटे बच्चे हैं बिचारे के।
दूसरी आवाज	:	कितनी मुश्किल से जिये थे!
तीसरी आवाज	:	कौन परवरिश करेगा इनकी?
चौथी आवाज	:	सुना है पत्नी पढ़ी-लिखी है।
दूसरी आवाज	:	यार, एक बात कहूं। विधवा है तो दमदार।
तीसरी आवाज	:	क्या मतलब?
पहली आवाज	:	इसकी नजर तो शरीर पर ही फिसलती रहती है।
चौथी आवाज	:	अरे शर्म कर यार। दर्द के साथ दिल्लगी अच्छी नहीं।
दूसरी आवाज	:	मेरा मतलब यह नहीं था।
पहली आवाज	:	अब रहने भी दे अपना मतलब।
तीसरी आवाज	:	टापिक बदलो, बोर हो गये।
चौथी आवाज	:	मजाज की वह नज्म याद आती है– जैसे बेवा का शबाब·······
तीसरी आवाज	:	यार बन्द कर यह बकवास।
दूसरी आवाज	:	ये तो गांधी बाबा है, न बुरी कहें, न सुनें, न देखें।
पहली आवाज	:	सुना है रामभरोसे कवि भी था।
चौथी आवाज	:	हिन्दुस्तान की एक चौथाई आबादी कवियों की है।

[एक ठहाका। जोरदार हंसी]

पहली आवाज	:	सुना है विधवा नौकरी करेगी।
तीसरी आवाज	:	कौन देगा इस उम्र में नौकरी।
चौथी आवाज	:	ये दे देते, अगर ये अफसर होते।
दूसरी आवाज	:	देख, मुझे ऐसी मजाक पसंद नहीं। दिमाग को गिरवी मत रख।
तीसरी आवाज	:	अरे हंसी-मजाक में गर्म क्यों होता है ?
दूसरी आवाज	:	लोगों की इज्जत तुम्हारे लिए हंसी-मजाक है।
चौथी आवाज	:	भाई जान, आपको बुरा लगा तो मुझे खेद है।
पहली आवाज	:	बोर हो गये यार। टापिक बदलो। □ □

फैसला

□

कुमर मेवाड़ी

फैसला

गांव में चहल-पहल शुरू हो गयी थी।

सवेरे का सुर्ख़ सूरज पूरब दिशा की बड़ी पहाड़ी की चोटी पर आ टिका था। नुक्कड़ की दो-चार दुकानो के साथ-साथ जग्गू की होटल के भी पट खुल चुके थे। वैसे पौ फटने के बहुत पहले ही जग्गू की होटल पर जमावड़ा शुरू हो जाता है। पर आज बहुत देर बाद जग्गू ने दुकान खोली थी। नित्य की तरह जग्गू का चेहरा आज खिला हुआ नही था। शायद रात की घटना का प्रभाव अभी तक उसके मन मस्तिष्क पर शेष था। फिर भी वह अपने ग्राहकों का पूरा ध्यान रख रहा था और आने जाने वालों के सवालों के जवाब दे रहा था।

इस बार बारिश बहुत अच्छी हुई थी। मकई की फसल पूरे उठान पर थी। अभी फसल के कटने मे देर थी। इसलिये जग्गू की होटल गांव वालों का खास अड्डा बनी हुई थी। इस वक्त भी दस-बारह ग्राहक जमे हुए थे। जिनमें सात-आठ दुकान के अन्दर बैठे चाय सुड़क रहे थे। शेष बाहर की टूटी बेंचो पर डटे थे। ये लोग चाय-वाय पी चुके थे और अब बैठे-बैठे गप्पबाज़ी करते हुए बीड़ी फूंक रहे थे।

जग्गू की यह होटल गांव की आबादी के पिछड़े इलाके में स्थित थी। जहां अधिकतर गरीब लोगो के घर थे, जिनमें चमार, रेगर और बुनकर लोग रहते थे। ये सभी लोग खेतीहर मजदूर थे और ठाकुरो की भूमि पर मजदूरी करके अपना पेट पालते थे। यहां की आबादी पूरे गाव की आबादी का एक तिहाई भाग था। और पिछड़े लोगों का यह इलाका चमार टोला के नाम से मशहूर था।

नन्दू काका को इधर आते देख कर जग्गू ने छोटी केतली मे पानी उबलने के लिये रखा और उसमें दो चम्मच चाय और शक्कर मिला कर बिना दूध की एक गिलास कड़क चाय तैयार की। नन्दू काका इस इलाके के मुखिया थे और पूरा चमरोटा उनका आदर करता था।

जग्गू के हाथ से चाय का गिलास थामते हुए नन्दू काका ने पूछ ही लिया "क्यों रे जगुवा कल मइया को काहे का गोग्गुल हुवा तेरे हियां।" बात पूछ कर काका ने जग्गू के चेहरे पर अपनी निगाह टिका दी।

जगुआ गुन-मुन। वह कुछ बोले उससे पहले ही बोल उठा किसना रेगर-"काका ठाकुर रघुवीर के लौंडे-लपाटे चढ़ आये थे जगुवा पर और कह रहे कि— साले होटल चलानी है तो सीधी तरह चला नहीं तो एक दिन आग में भुगस देंगे। यह सब देख सुन जगुवा को जैसे काठ मार गया। एक बोल तक नहीं फूटा मुँह से तब बोला राधिया—"काहे हो बाबू साहब क्यों धमकाय रहे हो हम बिचारे को। इसका दोस तो बताओ।" इस पर बिफर उठा था ठाकुर का बड़का लौंडा। "सालो अब दोस भी हमीं को बताना पड़ेगा क्या? तुम सब मादर...हो। मैं तुमसे एक-एक से निपट लूंगा। दिन रात इस होटल में इकट्ठे होकर पोलीटिक्स खेलते हो और हमसे पूछते हो कि दोस क्या है? "भला काका अब तुम ही बताओ क्या हम चाय भी नहीं पियें। ये ठाकुर लोग तो दारू की बोतलें की बोतलें खाली कर दें और हम चाय पीने इकट्ठे हों तो वह इनकू पोलीटिक्स लगे।"

कुछ क्षण मौन छाया रहता है फिर इस चुप्पी को तोड़ा जग्गू के छोटे भाई रामेश्वर ने। जिसे गांव वाले प्यार से रामेसर कहते है। रामेसर हृष्ट-पुष्ट और एक गुस्सैल नवयुवक है। वह आजकल शहर के कालेज में पढ़ रहा है। वह कहता है— "काका, भइया का कसूर ही क्या है? बस उन्होंने यही तो कहा था कि इस बार सरपंच चमार टोला का आदमी बनना चाहिये। बस, इत्ती सी बात पर ठाकुर टोले में आग लग गई। तुम्ही बताओ काका, क्या चमार टोले का आदमी सरपंच नहीं बन सकता?"

"क्यों नहीं बन सके रे रामेसरवा! जरूर बन सकें है। पर ठाकुर लोगन से बैर कौन मोल ले?" बूढ़े काका ने अपने अनुभव के आधार पर कहा।

जग्गू की होटल के आस-पास भीड़ इकट्ठी हो गई थी। कुछ लोग बैठे थे। कुछ खड़े थे। दो-चार औरतें भी जो शायद खेती की ओर जा रही थी, रुक कर बातचीत सुनने लग गयी थी। एक मीटिंग जैसा दृश्य उपस्थित हो गया था।

"इसमें बैर मोल लेने की क्या बात है काका।" जस्से सुथार ने बात को आगे बढ़ाया। यह तो अपने अधिकार की बात है। कानून कहता है कि हमारे देश मांय लोकतन्तर है। हर आदमी सरपंच का वोट लेने खड़ा हो सकता है। फिर चमार टोले का आदमी क्यूं नहीं खड़ा हो सकता?

"तुम्हारी बात ठीक है। देस मांय कानून है, लोकतन्त्र है।" काका ने कहा– "पर तुम नही जानते इस गाव तक देश का कानून नहीं पहुँचा। हियां तो अभी तक ठाकुरों का ही राज है। हमकूं उनकी मरजी के हिसाब से चलना पड़ता है। अगर हम अपनी मरजी से चलेंगे तो वे इस गांव मे हमारा रहना दुभर कर देंगे। वे कहते हैं कि हमने सरपंच के चुनाव में अपना आदमी खड़ा किया तो वे अपने कुओं से पानी भरना बन्द कर देंगे। अब तक यही हुआ है।"

"अब यह नही होगा काका। अगर वे हमें पानी नही देंगे तो फिर इस साल फसल का बटवारा भी नही होगा। वे हमें पानी नही देंगे हम उन्हें अनाज नहीं देंगे।" एक और कालेजियट लड़का भीड़ में से बोल उठा।

"तुम अनाज कइसे नही दोगे। जमीन तो ठाकुरों की है।" काका ने कहा।

"जमीन ठाकुरों की नहीं काका। जमीन हमारी है, क्योंकि बरसो से हम उस पर अपना खून-पसीना एक करते आ रहे हैं।" रामेसर चीख उठा।

"यह झगड़ा बढ़ाने वाली बात है रे रामेसर इससे टंटा बढ़ेगा।" काका ने कहा।

"इस बार सरपंच हमारे टोले का आदमी बनेगा काका, चाहे संघर्ष बढे या घटे।"

एक साथ कई युवकों की आवाजें गूंज उठी।

"अच्छी बात है रे भइया! अगर तुम लोगन ने यही सोच लिया है तो ठीक है। तुम चाहते हो कि चमार टोले के लोगन को ठाकुर के आदमी लाठियो से पीटें तो मैं भला इसमें क्या कर सकता हू।" बड़े निराश स्वर में काका ने कहा।

"काका लाठियों और बन्दूकों से कायर लोग डरते हैं। फिर हमारे हाथ मे कोई चूड़ियां नही है। यह फैसला तो एक दिन होना ही है, फिर वह आज ही क्यो न हो जाय। आखिर कब तक कुछ मुट्ठी भर लोग हमे लाठियो और बन्दूकों के बल पर अपनी मर्जी के अनुसार हांकते रहेंगे। अब हम ईंट का जवाब पत्थर से देंगे।" रामेसर ने दहाड़ते हुए कहा।

"हां हम ईंट का जवाब पत्थर से देंगे।" वातावरण में एक साथ कई स्वर फूट पड़े। सूरज का लाल-लाल गोला आकाश के मध्य आ कर रुक गया था और उसकी तेज किरणें धरती पर सीधी पड रही थी। सूर्य के तेज प्रकाश मे चमार टोला के लोगो के चेहरे दमक रहे थे। उनके अन्दर एक नये संकल्प के उत्साह का समदर ठाठे मार रहा था। उधर ठाकुरो के शान्त साम्राज्य में आग लग गयी थी। ठाकुरो के हौसले पस्त थे। ठाकुर टोला ईर्ष्या और वैमनस्य की आग में जल रहा था और वहां से आग की भयानक लपटें उठ रही थी। □ □

बरना



योगेन्द्र किसलय

बरना

गज्जू ने अपनी जात में अनेक शादी-विवाह देखे थे। बारातों में भी गया था। पीले कुर्तों में, गले में सोने की चमकती हँसुली पहने, माथे पर तिलक लगाए, आँखों में गहरा काजल खींचे, पावों में एड़ीदार चर्र..... चर्र.... ... वाले शहरी जूते पहने हर ढब से सवरे संवराए बरने देखे थे। लपटना कैसा लगता था बरने के भेष में। काला, ताड़ सा लम्बा लेकिन दुल्हे की पोशाक में जंचता था मेरा यार। उनकी बारात में वह गया था।

गणेसा भी इसी तरह सजा था और रामभरोसे की शादी में तो क्या आतिशबाजी छूटी थी। शोले आसमान से जा जा के टकराते थे। आसपास के दस गांवों में उजाला हो गया था। और अब भागजगा ये लपटना भी ब्याह लाया। ऐसी बात नहीं कि गज्जू का मन हिरण या हरे-भरे खेतों की फुलक-फुलक को चर जाने वाली नील गाय की तरह छलांगें न भरता हो, लेकिन वह सोचता था कि उसका दादा भी एक दिन उसे बरना बना कर ले जायेगा। और फिर *उसके बाप और चाचा के पास तो बीस बीघा जमीन भी है।* बड़े घर के ठाकुरों के पुरखों ने मौरूसी दी थी, तभी से चली आ रही है। गाव में और किसी भी चमार के पास खूंट भर जमीन भी नहीं है।

गज्जू का यह सोचना बिलकुल सही था कि सारे चमारों में उसके घर की इज्जत है और उसकी या उसके चाचा के लड़के धीरा की शादी सबसे धूम-धाम से होगी।

इसी सोच सोच में दो वर्ष बीत गए। गज्जू अब सोलह का हो गया था। धीरा और वह सारे दिन खेत के काम में लगे रहते। बीस बीघा अपनी जमीन थी और पचास बीघा बटाई की खेती थी। धीरा उससे दो वर्ष छोटा होगा। दोनों में सगे भाइयों का सा व्यवहार था और वास्तव में दोनों बहुत वर्षों तक यही समझते रहे थे कि वे एक ही बाप की औलाद हैं। धीरा गज्जू के दादा तोता को दादा ही बोलता और धीरा के बाप छिद्दा को वे दोनों ही चाचा कह कर पुकारते।

तोता और छिद्दा के घ र इन दोनों की वहुओं के अलावा थी नत्थो। नत्थो ने आठ वर्ष इसी उम्मीद मे काट दिए थे कि कब गज्जू बड़ा हो। तोता का बड़ा लड़का विवाह के दस महीने बाद ही मर गया था। नत्थो की उम्र उस समय पन्द्रह के करीब रही होगी। तोता ने तो नत्थो के बाप से कहा था – "जवान लड़की है। कहीं और ब्याह दे इसे।" मगर नत्थो का बाप ही मुकर गया था। बोला "मुझे ऐसा घर कहा मिलेगा। उसने सुझाया कि नत्थो गज्जू की हो जायेगी। गज्जू जवान हो तब तक यहीं पड़ी रहेगी।" तोता भी इस पर राजी हो गया था। नत्थो भी जान गयी थी, और तब से वह पीपल वाली शीतला मैया से यही विनती करती रही है कि गज्जू वेग से बड़ा हो। बड़ा मातबर जवान निकले।"

और नत्थो प्यार से गज्जू को खाना परोसती। गेंवली की रोटी गुड़ के साथ मठे में मीड़ मीड़ कर खिलाती। मलाई से तर दूध का गिलास पिलाती और खोयी-खोयी प्यासी आंखों से जब तब गज्जू को ताकती। अच्छे नैन नक्श हैं। देह का भी भरा पूरा निकलेगा। वह पूछती आज के हाथ ठेका मारे ? मद् में कौन जीतो ?'

और कभी-कभी क्या रोज ही शाम को झुटपुटे मे घी या अचार निकालते समय भीतर की कोठरी में, दुमारी में जब कभी भी एकान्त मिलता तो वह गज्जू को थाम लेती, उसे अपनी बाहो में खींचकर अपनी छातियों से लगा लेती, जगह-जगह कटखने चुम्बन लेती और इससे पहले कि उसके शरीर की गर्मी बाहर निकल पड़े गज्जू घबरा कर, शरमा कर किसी तरह अपने को छुड़ा भाग जाता। अकेली खड़ी या लेटी नत्थो थोड़ी देर खोयी सी रहती फिर मुस्कराकर घर के कामकाज में लग जाती।

गज्जू सोलह वरस का हो गया, कोई बच्चा नहीं रहा। नत्थो की क्रीड़ाओं से उसका शरीर झनझना उठता और उसकी गिरफ्त से दूर निकल कर उसके ओठों से निकल पड़ता था 'ससुरी'। उसके चेहरे पर मस्सें निकल आए थे। 'जवानी फूट रयी है मेरे राजा को' नत्थो कहती थी। नारी-स्पर्श से उसका शरीर विचलित होने लगा था। पोखरे पर समरथा की जवान लोंडिया बिंदिया को कपड़ा कूटते और नहाते मे उसने नितंब नंगा देखा था और छुप-छुपाकर ऐसे दृश्य देखने को उसका जी चाहने लगा था। रेवती को अट्ठनी के कलाकन्द के लोभ मे श्यामू, धीरा और वह कई बार खेतो में ले गए थे। गज्जू से वह कहती "दायरी के तुम भोंप मार के मानोगे।" इन दिनो रेवती ससुराल चली गई थी।

पर न जाने क्यो नत्थो के बाहुपाश में गज्जू की सांस फूलने लगती थी ?

कई बार उसने सोचा कि धीरा या श्यामू से पूछे लेकिन मन मारकर रह जाता। सोचता नत्थो अपने घर की लुगाई है। औरों से उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए।

नत्थो देखने में अच्छी खासी थी। रंग में जरा सांवली मगर नैन नक्श तीखे और बदन आकर्षक था। शरीर की काठी मजबूत थी। पांवों में पड़ी इकतड़ी झांझर घर आंगन में झनझनाती रहती। कमर में पड़ी चादी की भारी करधनी से चलने पर नितम्बों में लचक पैदा होती थी। आंखों में पतला काजल पुता रहता; कलाइयों में मोटे कांच की चूड़ियां। बहुत पहले विधवा हो गयी थी लेकिन उसका साज सिंगार सब सधवाओं जैसा था। विधवा हुई अवश्य थी लेकिन फिर से सधवा बना दी गयी। जैसे-जैसे गज्जू का सीना और लम्बाई बढ़ती गयी वैसे ही नत्थो के भीतर गुदगुदी होती गई। मन के मीठे कम्पन का अर्थ वह क्या समझे! लेकिन उम्र की कोयल अपने आप कुहुकने लगती है। शहर की नीली, फिरोजी आंखों वाली कोमलांगी मेम हो अथवा गांव की रंग चढ़ी गंवारिन, सपने दोनों की आंखों में तैरते हैं, बांहों को खोलकर किसी को उसमें भर लेने की ललक दोनों के मन में समान रूप से होती है।

और नत्थो के मन में यह ललक उफनते सागर की प्रबल तरंगों की तरह उठती और असहायता के उदासीन किनारों से टकरा कर बिखर जाती। गज्जू उसका एक मात्र किनारा था। वह चाहती थी कि उसका सर्वस्व गज्जू के अस्तित्व से टकराये और इस टकराहट में वह बिलकुल खुल जाए, खिल जाए, अंग-अंग से बिखर जाए। वह सब कुछ जानती थी। उसने हिलती हुई चारपाइयों का शोर सुना था, एक पिछोरे में दो देहें असफल रूप से ढुबकी हुई देखी थी। वह जानती थी सैन, वायदे और छेड़छाड़ का क्या मतलब होता है? झूमती हुई अरहर के खेतों में घास खोदते में पकड़ ली जाने वाली कुआरियों और जवान बहू-औरतों की चाही-अनचाही मस्तियों से वह वाक़िफ़ थी। वह भी बेदाग नहीं रही है, यह वह जानती है। रामपियारा लट्टू की तरह उसके चक्कर काटते-काटते स्वर्ग ही चल बसा। बड़ा गन्दा बकता था कमीना। लखना जाट ने भुट्टों से गदरायी ज्वार के खेत में उसे नीचे डाल लिया था। कितना डर रहा था उसे पूरे माह-तक और जब फिर से उसकी धोती में दाग पड़े थे तब पीठ और पेट में जानलेवा दर्द होते हुए भी उसने राहत की सांस ली थी और कम्बख्त रुक्मिनी! उसे तो मर्द होना चाहिए था। ऐसी मसमसाकर छातियां दबाकर भाग जाती कि कई दिनों तक दर्द बना रहता। पास सोती तो चिपक जाती, काटती, रिरियाती। अभागी मर्द होती तो महरिया की जान ही ले लेती। जितनी दबंग और तन्दुरस्त वह खुद थी उतना ही झेंपू और तिनके से शरीर का उसका

खसम था । औरतें हंसी-ठिठोली करती तो बेफिक्र कहती– "ऊ'र मुवावनी हूं वाय ।"

दृश्य पर दृश्य, सपनों पर सपने नत्थो की आंखों में पिछले सात-आठ वर्षों से घूमते-तैरते रहे हैं । वह कभी थकी नहीं । उसने अपने शरीर को ढीला नहीं होने दिया । चमड़ी की चिकनाहट पिघी छूट जाड़े और शरीर तिरा देने वाली धूप में भी बनी रही । उम्मीद बहुत मजबूत वस्तु है । और अब उसके दिन आए हैं । गज्जू सोलहवां पार कर चुका है । उसका सीना बहुत चौड़ा फैला है । वह बड़ा छबीला, मातबर मर्द हुआ है । बिलकुल जैसा वह चाहती थी ।

गज्जू को भी नत्थो के साथ अपने सम्बन्ध का पता लग चुका था । पहले वह कभी नहीं जानता था और नत्थो की शरारतों और चेष्टाओं से घबड़ा कर वह दूर भागता रहता, परन्तु अब वह मन ही मन जान गया था कि वह नत्थो के लिए क्या है ? मरजू पंडित जब तब उससे परिहास करते : 'तेरे बाप ने तो पैले से ई बाध रक्खी है।" एक दिन हीरा कुम्हार अपनी लुगाइया के सामने ही पूछ बैठा, "कर्योजी अब तो चढ़ाई सरू कर दयी होगी ।" "हट ससुरे भगी"–गज्जू भैंस हांकता हुआ आगे बढ़ गया । शर्म से उसके कान लाल पड़ गए । नत्थो को लेकर उसे कोई मजाक अच्छी नहीं लगती । न जाने क्यों ? उसने गुस्से में भैंस के पुट्ठे पर अरहर की लकड़ी खींचकर मारी और उसके पीछे-पीछे तेज कदमों से चलने लगा ।

गज्जू ने नत्थो के सम्बन्ध में अब अधिक गहराई के साथ सोचना प्रारम्भ किया । उसे नत्थो का अपने प्रति प्रेम और अपनत्व का दृष्टिकोण समझने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई । वह आखिर अब सब कुछ समझता था । ऐसी बात नहीं कि वह खुद ही नत्थो की चेष्टाओं तथा क्रीडाओं से दूर भागता रहा हो बल्कि वह प्रारम्भ से इस सम्बन्ध को गलत समझे बैठा था और अब इस सम्बन्ध की व्याख्या हो चुकी थी । "अरे तेरे लिये तो बैठी रई है हाथ पे हाथ धरे ।" यह वह बहुतों के मुखों से सुन चुका था । सो नत्थो को नहीं स्वीकारने जैसी कोई बात नहीं थी । घर में उठते बैठते वह नत्थो को चोरी-चोरी अर्थ भरी नज़रों से देखता था और देख कर लम्बी सांस भी भरता था । लेकिन जब-जब भी वह उसके प्रति अग्रसर होती, जब-जब भी उसकी दैहिक औरत जागती और वह गज्जू को अपनी मांसल परिधि में वेष्टित करने की चेष्टा करती तब गज्जू अनाड़ी की भांति घबराकर नत्थो की पकड़ से दूर भागता । रह जाती केवल नत्थो रात के अंधियारे में दुआरी में खड़ी या खाट पर टांगें फैलाए पड़ी– विवश परन्तु बलवती उम्मीद की चमकदार रेखा को अपनी आंखों में भर आने वाले कल की

प्रतीक्षा में। वास्तव में अब वह और अधिक बाट देखना नहीं चाहती थी। लुब्ध यौवन का लगभग एक दशक उसने बिना रति-सुख के काटा था। अब वह थक गयी थी, या कहिए ऊब गयी थी। अब अवसर बेअवसर शरीर में उठने वाली सिहरन से वह तंग आ गयी थी। अब काम-उद्दीपन को दबाए रखना उसके वश की बात नहीं थी, विशेषकर जब उसके सामने भरी पूरी देह वाला उसका गज्जू इस निमित्त आ गया हो। वह स्वयं में ही कह उठती 'रे, और कित्ती बाट करवावेगो हरजई।''

शीघ्र ही सब कुछ नत्थो जैसा चाहती थी वैसा उसे मिल गया। गज्जू उसके पास जाने लगा था। रातों को अब वह सीधा उसके कोठरे में आ जाता। कुछ ही महीनों में उसके गाल पिचक गए और चेहरे की हड्डियां उभर आयीं। औरतें नत्थो को छेड़ती– निगोड़ी, छोरे पे जरा मिहरबानी रख। सारो निचोड़ के रख दयो है तैंने'। गज्जू के साथी संगाती कहते, 'हद कर दई या भुक्खा ने बिलकुल कुत्ते की सी गति कर रक्खी है।'

गज्जू के मन में अब कोई भ्रम नहीं रह गया था। नत्थो खुले आम उसे 'ओ जी' कह कर पुकारती। उसके कपड़े लत्ते सब नत्थो की कुठरिया में आ गए थे। नत्थो उस पर अपना रंग जमाने में सफल हुई थी। उसका सबूत था कि कोई भी रात खाली नहीं जाती थी, और गज्जू खुद पहल करने लगा था।

लेकिन शायद नत्थो गलत थी। गज्जू की हालत उस शराबी की तरह थी जो नशे में चूर रहता और होश आने पर ग्लानि और क्षोभ की मार से परेशान रहता। इसके अलावा कलोदा ने उसका दिमाग खराब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उमर में कलोदा उसके बाप के बराबर था पर उससे ऐसे बतियाता जैसे उसकी उम्र का हो। गज्जू एकान्त में कलोदा की बातें सोचता और उसकी सच्चाई का अनुभव करता। ''अधेड़ थमा दयी है तेरे बाप ने। अरे तोकूँ का कमी थी। ढंग सूं शादी विवाह करतो। तोय बरना बना के लै जाते। एत्ते बढ़िया रिश्ते बताए तेरे बाप कूं मगर वाके कान पे तो जूं भी ना रेंगी। जरा सोच उमर में कै साल बड़ी तोसूं है?''

कलोदा के चंगुल में गज्जू धीरे धीरे फंसता चला गया। लेकिन बाप के आगे बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। नत्थो से बेमना बतियाता, लेकिन रात में नत्थो उसे जैसे सब कुछ भुला देती। वह खुद भी न समझ पाता कि उसे नत्थो की बाजू में आते ही न जाने क्या हो जाता है। रातें आनन्द की थकान में बेभिन्न एक झपकी में गुजर जाती। फिर दिन आता और फिर वह अपने

मन मे विद्रोह का साहस एकत्रित करता रहता ।

साल भर और गुजर गया । तोता और नत्थो दोनों ने गज्जू के मन को भाप लिया था । गज्जू ने घर मे रार मचाना शुरू कर दिया था । दिन भर घर मे बाहर रहता । रातो को भी खेत पर सो रहता या कलोदी के चबूतरे पर पड़ा रहता ।

दोनो भाई सलाह करते । तोता कहता— "साले कलोदी की शरारत है ।' फिर चिलम का कश भरता हुआ कहता 'या गजुआ की मति मारी गयी है, सिगरे दिन भन्नायो भा फिरे है । अपने आप ठिकाने पे आ जावेगो ।'

मगर गज्जू ठिकाने पर नहीं आया । वह और भी भन्नाया फिरता । अब तो घर मे खुला कहने लगा – 'दादा ने मेरे संग ज्यादती करी हैं ।' वह चाहता था कि उसके शब्द हूबहू बाप तक पहुँच जायँ । वह तरह तरह की कोशिशें करके रह गया लेकिन तोता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

नत्थो इसी बीच एक तनाव में जीती रही । वह यह सोचकर रह जाती कि बिरादरी वालों ने गज्जू का दिमाग खराब कर दिया है । इस कलोदा ने अपने लड़के के लिए उसकी बात चलायी थी लेकिन उसके दद्दा ने घर पसन्द किया तोता का । अब उसे मौका मिल गया था गज्जू को बरगलाने का ।

गर्मियों में आ गयी धीरा की शादी । धीरा के विवाह के पाच दिन रह गए थे । उसके बदन पर रोज हल्दी चढ़ती और वह औरतों लड़कियों के बीच में घिरा रहता । गाव की पोखर तक उसे गीत गाती औरतों, के झुंड के आगे सूप पूजने को ले जाया जाता । खेती-बारी के कामो में वह पूर्णतया मुक्त था । गज्जू धीरा के मुकद्दर से डाह करता और सारा दिन इधर उधर घूम भटक कर काटता । उसके बाप ने जब उससे एक दो नए कुरते बनवाने को कहा तो वह उबल पड़ा । "मोय ना चाहिए तुम्हारे कुरता-वुरता । जो कछु करनो है तुमें सो धीरा के लें करो ।"

धीरा की शादी होकर आ गयी । घर में नयी बहू ही बहू दीखती । बड़ी हवेली ठाकुरों के यहां गयी तो वहा से पंद्रह रुपये मुंह दिखरौनी में मिले । उनमे से पाच धीरा ने मार लिए । गज्जू के साथ कलाई जाकर तीन रुपये का कलाकन्द खरीदा । खुद खाया और एक दौने मे अपनी बहू के लिए रख लिया ।

गज्जू के सामने जब भी धीरा की बहू पड़ती तो वह ठगा सा उसे

देखता रह जाता। लाल, पीली साड़ी में वह बड़ी लुभावनी लगती। नत्थो को सारे दिन जिया-जिया कहती और उसका दिन का अधिकांश समय उसी के साथ बीतता।

वह कोठरी के बाहर खड़ा था। खेत से लौटकर आया था। कोठरी के किवाड़ भिड़े थे और अन्दर नत्थो नयी बहू से मजाक कर रही थी। "अरी कछु बताय के तो दे। तू तो ऐसी भोली बन रई है जैसे कछु जानता ही नांय। सिगरी रात छत पे चरपइया चरमरायी है। आज मूं नीचे लगइये बिस्तर।"

गज्जू की खंखार से धीरा की वह कोठरी मे निकल कर उससे बिलकुल सटती हुई सपाक से निकल गयी। महक रही थी। जरूर कछु खशुबोई लगा रक्खी होगी। इतनी नजदीक से गयी कि उसका सारा शरीर कांप उठा।

अन्दर आकर वह चारपाई पर लेट गया। नत्थो रोटी लेने चली गयी। उसे कमरे में भी खुशबू आ रही थी। उसने चारों ओर नजर दौड़ायी। नयी बहू का कुछ भी तो नही था उनके कोठे मे। वह पड़ा-पड़ा सोचता रहा। उसने क्या कुसूर किया है। दादा ने उसके साथ ये नाइन्साफी क्यो की है। उसे बरना क्यों नहीं बनाया? उसकी दुलहिन भी लाल, पीले चमकदार कपड़े पहन कर घूमती, उसके शरीर से खशबू छूटती और उसके लिए वह रोज कलाई से कलाकन्द और खोये की गुंझिया लाता।

नत्थो गेंचनी की रोटी, आम का अचार और एक लम्बे गिलास में मट्ठा लेकर आयी। गज्जू अनमना सा उठ रोटी खाने लगा। नत्थो पंखा झलने लगी। "आज काय की परेकट ही।" गज्जू चुप रहा। वह नत्थो से बचना चाहता है लेकिन नत्थो चतुर शिकारी की तरह उसे दबोच ही लेती है। जब-जब भी वह उसकी आँखों की तरफ देखता है तब वह इस तरह मुस्कराती नजर आती है और उसका समूचा जिस्म इस तरह हिलता सा लगता है कि वह अपनी समस्त उपेक्षा के बावजूद भी उसके आगे लाचार हो जाता है। नत्थो में आकर्षण से अधिक चातुर्य है, अनुभव है। वह गज्जू की मन.स्थिति भले ही पूर्णत: न समझती हो लेकिन यह अवश्य जानती है कि घोड़े को दाना पानी अच्छा मिलना चाहिये। रिझाने लुभाने की कला वह जानती है। यही कारण है कि अपना क्रोध बनाए रखने के लिए वह बाहर रहता है तो ठीक है लेकिन घर के अन्दर, नत्थो के साहचर्य में आते ही वह बदल जाता है– अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी।

रोटी खाने के बाद उसने एक लोटा पानी पिया और वहीं चारपायी

पर बैठे-बैठे ही एक कोने में कुल्ला किया और हाथ धोकर उठने लगा तो बरतन समेट कर ले जाती नत्थो ने कहा: "कां जाओगे। भरी धोपरी है। तनिक सुरता लेउ। मैं गुड की डली लेके अबई आई।" वह गयी और आयी। हाथ में पानी का लोटा और गुड का डेला।

गुड के साथ पानी पीकर गज्जू जाने लगा तो वह उसका कंधा थाम कर बोली– 'लू बू लग जावेगी। नेक आराम करके चले जइयो।' और उसने गज्जू को खींच कर लिटा दिया। खुद भराक में उसके पास लेट गयी और गज्जू के गाल पर हल्की सी कट्टी लेती हुई बोली– 'अति तो उनन ने मेर रखी है। सारी रात लनी है। धोपरी में तो हम कछु अपनी सोचें।'

लेकिन नत्थो अपनी समस्त सतर्कता और समर्पण के बावजूद भी गज्जू को बांध कर नहीं रख पायी। चतुर से चतुर शिकारी भी जगल से खाली हाथ लौटता है। यही हाल नत्थो का हुआ। वह गज्जू को सब कुछ दे सकी लेकिन गज्जू के मस्तिष्क में दूल्हा बनने की जो तस्वीर थी उसे वह छिन्न-भिन्न नहीं कर सकी। गज्जू को उससे कोई शिकायत नहीं थी, न ही वह उससे ऊल-जलूल बातें ही करता। मगर उसके भीतर नत्थो के प्रति कोई उत्साह नहीं रह गया था। कलोदी के भड़काने लोगों के छेड़ने व इन दोनों से भी अधिक उसकी दिली इच्छा यह थी कि जो उसके अन्य साथियों को प्राप्त हुआ, जो धीरा को प्राप्त हुआ वह उसे भी मिलना चाहिए। और नत्थो का इसमें क्या बिगड़ता है ? उसे घर से बाहर तो निकाल नहीं रहा। शरीर पर हल्दी का उबटन…… आतिशबाजी, घूंघट खींचे लजायी दुलहिन …… वह अक्सर यही सोचता रहता।

और एक दिन बहुत दिनों से मन में अटकी बात उसने अपने दादा से कह दी। साफ, साफ। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वह घर से भाग जायेगा। उसे नहीं चाहिए जमीन जायदाद। कहीं मजूरी करके पेट भर लेगा। इस घर में तो उसके साथ दुर्भात हुई है।

उसे समझाना बुझाना बेकार रहा। तीन दिन घर में ही नहीं घुसा। नत्थो बड़ी हवेली चावल कूटने गयी तो पूछने पर छोटी बहूरानी को उसने बताया: "जिद्द पकरे बैठे हैं। अब तो मौत लायके ही मानेंगे। नाश जाय उस कलोदी कौ। गुई जड है या सबकी। रोज बुलाय बुलाय के पट्टी पढायी है मरे ने।"

वही हुआ जिसकी अभिलाषा अब तक गज्जू को उद्वेलित किए हुए थी। गाव से, पन्द्रह कोस दूर उसका ब्याह पक्का हुआ। 'चट मगनी, पट ब्याह।'

एक रथ जायेगा, चार मारकस, दो तीन फिरक और लेहड़ियां। सवारियों की खोज होने लगी। आतिशबाजी की पेशगी दे दी गयी। गज्जू के हल्दी पुती। घर में फिर वही गीत गूंज उठे जैसे घीरा की शादी के वक्त में गूंजे थे। खुद धीरा की बहू रात भर ढोलक पीटती रहती। बाहर चबूतरे पर चारपायी पर लेटा गज्जू ढोलक की थापों पर रोमांचित होता आगे की सोचकर हुलस हुलस जाता।

इस सारे क्रम में जितना ही खुश गज्जू था उतना ही दुखी नत्थो थी। इसलिए नहीं कि वह लुट रही थी बल्कि इसलिए कि वह हार गयी थी। गज्जू की मनोदशा से अनभिज्ञ वह यही सोचती कि उसमें शायद कुछ रह ही नहीं गया है कि वह अब किसी मर्द को रिझाने की उम्र में नहीं रही, मगर जब वह अपने को देखती और पाती कि उसकी मासल देह में अभी वह सब कुछ शेष है जो एक जवान औरत में होना चाहिए तो वह कलोदी को गालियां देने लगती, उसकी सात पीढ़ियों को कोसती और अपने प्रारब्ध के साथ समझौता करने का यत्न करती।

उस रात गज्जू को अकेला पा उसे दूध का गिलास देने पहुँची तो गज्जू सकपका कर खाट से उठ बैठा। पीले कुरते पाजामें में वह अजीब लग रहा था। नत्थो टकटकी लगाए उसे देखती रही। बहुत कुछ वह अपने बड़े भाई की तरह लग रहा था। थोड़ी देर वह खोयी रही, फिर बोली– "लो, दूध पी लेउ।" गज्जू ने उसकी ओर देखा। वह हंस रही थी। 'लेउ नए बरना। दूध पिओ माउर सेहत बनाओ। दोउ दोउ सभालनी परेगी अब। समझे।" हँसी में कह तो गयी वह लेकिन अन्दर से कलेजा जल रहा था उसका। गज्जू ने दूध पीकर उसे गिलास थमा दिया। वह अन्दर चली आयी। भीतर आगन में गीत चल रहे थे। "मेरे बरना के सर पे मुकट सजो। होय मेरो बरना करे कमाल रे।"

थोड़ी देर बाद ढोलक पर नत्थो की आवाज सुनायी दी। उसकी आवाज तीखी और बुलन्द है। वह गा रही थी। 'जेवर गढ़ाय दे रे कंजूस बलमा। हसुली गढाय दे टिकुली गढाय दे रे........।" गज्जू ने कुछ देर नत्थो के बारे में सोचा फिर परसों भोर की कल्पना करने लगा जब मारकसों में अलस सुबह बारात रवाना हो आयेगी और उसी रात उसके फेरे भी पड़ जायेंगे। सोचते सोचते उसे झपकी आ गयी।

बारात निकलते निकलते धूप चढ़ आयी। कुआ पूजने जाने से पहले गज्जू ने नत्थो से बीस रुपये मांगे। उसने कुछ रुपये अपने पास जमा कर छोड़े थे। नत्थो ने बक्से की चाबी उसे थमा दी। गज्जू बोला। "तू ही निकाल ना।"

नत्थो ने एक दस का और बाकी एक एक के खुले उसके हाथ में थमा दिए और फिर टुकर टुकर कर उसे देखने लगी। "बडे नीक लग रये हो वरना के भेप में। आखिर मन की करि कै ही माने।" गज्जू बाहर निकलने लगा तो उसका हाथ पकड कर बोली। "कहे देत हूँ मैं भी उठाईगिरी ना हूं। व्याहिता हूँ या घर की। जित्तो हक नई को होयेगो उत्तो ही मेरो। निगोड़े, मैं तो तेरे ही कुआ को पिऊँगी। पियासी रक्खेगो तो मारी दूंगी, हा।" फिर हँस कर बोली, "जा। अच्छी तरै ब्याह के लड्यो। अरे अब तो मुंह सीधो कर ले। तेरे जी की है रयो है।" और जब वह चलने लगा तो उसे अपने पास खींचकर बड़े दुलार से बोली, "अरे एक चुम्मी तो देतो जा।"

कुआ पूजन में चचिया सास और गनपता की बहू के साथ नत्थो सबसे आगे गीत गाती चल रही थी। गज्जू की चाल में रोब था। उसके चेहरे पर चमक। उसकी नोकदार जूतियां चरमरा रही थीं। पांवों के लाल मोजे दूर ही से नजर आते थे। पीले कुरते और पाजामे में वह अपने आप को दुनिया का सबसे भाग्यशाली आदमी समझ रहा था। दुर्जन काका चिल्ला कर कह रहे थे, "अरे मेहरबानो नेक जल्दी करो। का बन है गो। सारी चौपरी सर पै है के गुजरेगी।"

गज्जू अपने मारकस में बैठ गया था। साथ में धीरा और उसके दो दोस्त भी थे। नत्थो अभी भी उसकी तरफ देख रही थी मगर उसका ध्यान कहीं और था। □ □

मर्दानगी



राजानन्द

मर्दानगी

उसे मामूली घटना कहकर दरगुज़र किया जा सकता है। और वास्तव में मैंने उस घटना को अहमियत दी भी नहीं थी। कल सम्पादक महोदय का अपनेपन से भरा खत आया। लिखा था– खास तेवर की कोई तीखी और तल्ख कहानी भेजें। उन्हें मेरी दार्शनिक मुद्रा जंची नहीं। हालांकि मुद्राओं को अपनाना या ओढ़ना या नकाब चढ़ाना मेरे बस का नहीं है। फिर भी अपनों के दिये विशेषण भले लगते हैं।

वह मामूली घटना इस रिपोर्ट में कहानी की शक्ल ले ही ले, यह नहीं कह सकता। तीखा, तल्ख क्या होता है, ज़ायका लेने वाले जानें।

उन दिनों का माहौल ही ऐसा था। मजिस्ट्रेट, अफसर और सिपाही खास बाज़ारों और खास सड़कों पर क़हर ढहा रहे थे। किसी की क्या हिम्मत होती कि ख़िलाफ़त कर पाता। 'चूं' करने के मतलब, शामत बुलाना।

जीपें आतीं, नादिरशाही हुक्म सुनाती हुई निकलतीं–दूकानदार दूकानों के उन हिस्सों को तुड़वा दें जो फ़ुटपाथ पर हैं। सात दिन के बाद प्रशासन इन नाजायज़ कब्ज़ों को हटवा देगा।

एमर्जेन्सी। शहर का खूबसूरतीकरण। आतंक।

शहर खूबसूरत बनाया जा रहा है, ठेलों पर सब्ज़ी, फल, चप्पलें, पेन बेचने वाले खदेड़े जा रहे हैं। लकड़ी की दूकानें मज़बूत हैं, इसलिये एक दल उन्हें धराशाही करने के लिये साथ है।

साइकिलें फ़ुटपाथ पर खड़ी हैं, या नीचे सड़क पर हैं ! बटोर लो ! डाल दो ट्रक में। ट्रक आ रहा है। खबर के सुनते ही भगदड़ मचती है। वह ठेला उस गली में घुस रहा है, यह उस गली में। भागते-भागते भी दो चार दबोच में आ जाते हैं। सामान या तो ट्रक में जाता है या सड़क पर लुढ़कने लगता है।

गाली पड़ती है— उल्लू के पट्ठे डंडे के मग र नहीं मान सकते। जोशीले सिपाही एक दो बेंत सड़का देते हैं।

जिसका नुकसान होता है, चुप खड़ा देखता रहता है। जिसकी दूकान का हिस्सा तोड़ा जाता है, वह मलवा उठवाता फिरता है— तोड़ने वालों का काम सिर्फ ढहाना है। सड़कें चौड़ी होनी चाहिएं — शहर सुंदर लगता है। कोई मुकाबला नही कि दूसरो का पेट सिकुड़ता है।

दूकानों के बोर्ड एक रंग के होने चाहिए — जैसे स्कूल की यूनीफॉर्म होती है।

शहर का रंग तय हो चुका है—दूकानें उसी रंग की होनी चाहिएं। समाजवाद में लाल-पीली-हरी-नीली क्यों ?

आजादी के मतलब यह थोड़े ही है कि मर्जी आए वहीं बेचना शुरु कर दो। पीछे तांगे वाला चिल्ला रहा है, आगे मोटर हॉर्न दे रही है। नो ! नो ! दिस इज अनार्की, यह अव्यवस्थावाद है। नहीं चलने दिया जा सकता।

अफ़सर जीप में बैठा हुआ चिल्लाता है— व्हाट इज़ देट ?

उसकी खीखियाती आवाज और मेढक-सी बाहर निकली आंखों का तर्जुमा बज्जरभट्ट सिपाही फौरन कर लेता है। आनन-फानन में ठेले को उलट देता है। सामान सड़क पर लुढ़क रहा है।

वह ठेले का मालिक मिन्नत के लिये हाथ उठाने का वक्त नहीं पाता। दांत नही निपोर पाता।

व्यवस्था, व्यवस्था है। कब सलीके से, खूबसूरती से जीना सीखेंगे यह बेहूदे ! सरकार के आला अफ़सर और खुद सरकार, इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि गंवार तो गंवार है हीं, शहरी तबका भी तरीके से जीना नही जानता। सिखाना होगा।

स्टेशन रोड के फुटपाथ पर चार-पांच औरतें जमीन पर दूकान बिछाकर सामान बेचती हैं — बिंदी, टिकुली, सुई, तावीज का काला डोरा, कंघा, छोटा शीशा, कैंची, दांत खोदनी।

लहंगा और चूनरी। बिकने पटियादार बाल। अधेड़, जवान।

गांव के गंवार मोल-भाव के चक्कर में फ़ंसते हैं। अच्छी दूकानों पर जाने की न उनमें ताब है, न इतनी घटी भरी है।

विषयांतर। मेरा एक दोस्त उस बीच वाली जवान लड़की की बनावट का क़ायल है। क्या ठोस जिस्म पाया है! यह कहता है। कभी-कभी उससे बिला-जरूरत का सामान ख़रीद लेता है ताकि उसको नजदीक से देख सके।

घटना यहां घटी थी।

मजिस्ट्रेट साहब की जीप आई। उसके साथ सिपाहियों की जीप।

औरतों को फुटपाथ पर माल बेचते देखा तो तेवर चढ़ गए।

रुको! — वह चिल्लाए।

जीप रुक गई। पीछे वाली जीप के ब्रेक लगा। सिपाही निकल आए।

बेचने वालियों ने जीप रुकी देखी तो भागी सामान समेट कर।

वह जवान लड़की जैसी बैठी थी, बैठी रही।

चल! साथी औरत ने कहा। उसने अनसुना कर दिया।

उठ,यहाँ से! — सिपाही अफ़सर साहब को सुनाता हुआ जोर से बोला।

काहे को? उसने सिपाही को तेज नजर से देखा।

तेरे बाप का फुटपाथ है? दूसरे सिपाही ने डांटा।

तेरे बाप का है? वह उसके बराबर तेज बोली।

ज्यादा चर्बी चढ़ गई है? मार-मार के हड्डी के जोड़ खोल देंगे। तीसरे सिपाही ने धमकी दी। वह तमतमाती हुई खड़ी हो गई। — साली होगी तेरी माँ-बहिन। सामान के हाथ लगाया तो पत्थर से सिर फोड़ दूंगी।

एक सिपाही उसके बिछे सामान को फेंकने के लिये झुका। उस पर जैसे ख़ून सवार हो गया। उसने जोर से धक्का देकर उसे ठेल दिया।

भीड़ तमाशा देखने के लिए इकट्ठी हो गई। सिपाहियों का सामना करते देख कर लोग हंस रहे थे। उसे किसी की परवाह नहीं थी।

साहब के पास चल! पहले सिपाही ने कहा। उसने पकड़ने के लिये हाथ बढाया, लेकिन डर के मारे हाथ गिरा लिया।

चल, चढवा दे फांसी पर। वह तनी हुई जीप के पास पहुंच गई। भीड़ उधर हो ली।

—सामान हटा लो ! कल से इधर मत बैठना। मजिस्ट्रेट ने जीप में बैठे-बैठे कहा। वह लड़की की हिम्मत देख चुका था।

किधर बैठें, आप बता दो। दूकान नहीं लगेगी तो पेट कैसे भरेगा। उसने जवाब दिया।

फुटपाथ पर बैठने का कानून नहीं है। बक बक मत करो। अपने हाथ के डंडे को अफ़सर ने जीप की दीवार पर बजाया।

चार साल से इसी जगह बैठते हैं। अब कानून बन गया। गरीबों के लिये कानून हैं, बस। जहर की पुड़िया बटवा दो साहब !

साहब सिटपिटा गए। भीड़ हो-हो करके हंस पड़ी। साहब और सिपाहियों की मिट्टी खराब हो रही थी, लोगों को मजा आ रहा था।

फेंक दो सामान इसका। साहब भड़क कर बोले।

सिपाही जैसे उस तरफ़ मुड़े, वह दौड़ कर सामान के पास पहुँच गई।

—रुपया धर दो, और फेंक दो। माल किसी के बाप का नहीं है। निकालो रुपया ! जाओ साहब से लाओ !

सिपाही खड़े रह गए। मजिस्ट्रेट साहब की हालत देखने लायक थी। कुछ लोग औरत कह कर साहब से माफ़ करने के लिये कह रहे थे। दूसरे ताली बजा रहे थे। मजिस्ट्रेट साहब ने इज्जत बचाने के लिये सिपाहियों को आज्ञा दी—कल फिर आना। नहीं माने तो थाने पहुँचा देना।

सिपाही मन मसोस कर रह गए। जीप में आकर बैठ गए। दोनों जीपें चल दीं। भीड़ लड़की को घेरे रही।

—क्यों खड़े हो ? जाते क्यों नहीं ! खेल हो रहा था यहाँ ? जैसे उसने भीड़ के नामर्दपने को फटकारा हो।

वह सामान समेटने लगी। दूसरी औरतें, जो सामान उठा कर गली में भाग गई थीं, लौट आईं।

क्या कह रहे थे री ? एक ने पूछा।

अपनी माँ को जेल ले जा रहे थे। उसने उसी लहजे में कहा। सामान बाँध कर बोली— चलो ! भीड़ तितर-बितर हो गई। □ □

मेहनताना

□

शशिकान्त गोस्वामी

मेहनताना

तीस पैसे से ज्यादा मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकता।

मेरी बात पर उसने अपने सर पर टोपी के नाम पर रखे काले से चिथड़े को कुछ ठीक करते हुए गम्भीरता से सोचा।

तीस पैसे की अधिकतम सीमा मैंने खपच्चियों के पुतले जैसे उसके शरीर को मद्दे नजर रखते हुए तय की थी और मैं अपने निश्चय पर अटल था।

उसने दयनीय तरीके से मुझसे नजरें हटा कर आसपास देखा। मुझे लगा जैसे वह नपी तुली भीड़ वाले उस चौराहे में ऐसे किसी आदमी को तलाश कर रहा है जो उसके हित में तय पैसों को बदलवा सके। उसकी नजरें चौराहे के सन्तरी साइकिलिया क्लर्कों, ठेलेवालों और दूकानों के काउन्टरों को टटोल, लौट आयीं। मुझे अच्छा लगा। उसके चेहरे में हां फैल कर चौड़ी हो रही थी– धीरे-धीरे।

—चलिये आप भी क्या याद रखेंगे।

उसने आखिर बात मान ली। मुझे उसकी स्वीकृति से उतना ही सुख मिला जितना किसी अकल बेटे के परेशान बाप को शादी के लिये किसी भली लड़की के बाप द्वारा बेशर्त हां कर दिये जाने पर मिल सकता हो।

अचानक मेरे कदम तेज चलने लगे। रविवार की धूप फैली थी– फुटपाथों पर। दूकानों पर। चेहरों पर। वह कमर पर हाथ धरे एक पाव आगे चल रहा था। अपनी लय में। मैंने अपनी गति कुछ मन्द कर दी। फासला थोड़ा और बढ़ गया। कमर पर उसका हाथ जोर लगा रहा था। सूखा और झुर्रीदार हाथ। घुटने कागज से कमजोर उसकी तंग पैन्ट में बाहर दिखाई दे रहे थे। आसपास के तमाम नजारों को नजरअन्दाज करता, वह चल रहा था– किसी की भी बिना परवाह किये। अपने में लीन। चुपचाप।

हम अभी सिर्फ दस बारह पाँव ही चले थे कि उसकी सांस फूलने लगी।

पेट फैलने सिकुड़ने लगा। खुदबखुद उसकी गति धीमी हो गई। उसने पीछे देखा। मैं दूसरी तरफ देखने लगा। न जाने क्यों।

हवा गर्म गर्म बह रही थी। खाली सड़कों पर। शरीरों, घरों, दीवारों को छूती हुई। मन्द-मन्द।

उसकी कनपटी पर पसीना चिपचिपाने लगा। मैला और बदबूदार। एक हलकी सी गन्ध पीछे चल रहे मुझ तक आने लगी।

मैं अपने हिसाब के बारे में सोचने लगा। तीस पैसे दे देने के बाद तेरह रुपये और बीस पैसे मेरे पास बाकी बच रहेंगे। लगभग दस लम्बे और कठिनतम दिनों के साथ। ऐसी हालत में मैं खुद मजदूरी के तीस पैसे देने के बजाय लोहे का वह पुराना ट्रंक उठा कर ऊपर वाले कमरे में धर सकता था पर बुखार से उठे मुझे अभी दो दिन भी पूरे नहीं हुए थे। अतः मेहनत करना मैंने उचित नहीं समझा और उसे बुला लाया। तीस पैसों में किसी तरह राजी कर।

वह उसी तरह चल रहा था। दो रंग के उसके जूतों से पसीने के कारण पिचपिच की आवाज फूट रही थी। उसने पीछे देखा। जवाब में मैंने सामने वाले घर की ओर संकेत कर दिया। एक चमक उसकी छोटी और मिचमिची आँखों के आसपास जगमगाने लगी। जेब के पैसों को छू कर एकबारगी मैंने जोरदार सांस ली। मेरा दम भी फूलने लगा था। फाटक अन्दर की ओर सरका उसने एक खामोश इजाजत दरवाजे के बाहर खड़े मुझ से मांगी और जवाब पा वह अन्दर दाखिल हो गया। सुखद सन्तोष के साथ। मैंने उसे जगह बता दी। धूल जमी ट्रंक एक तरफ रखी थी। उसी तरह। उसने हाथ कमर से हटा लिये। एक क्षण को मुझे वह कुछ अस्वाभाविक लगा। वह तेज तेज सांस ले रहा था। लगातार।

उसके शक्तिहीन से शरीर को देख कर मैंने सोचा, इसे मैं गलत बुला लाया हूं मगर मैं भी मजबूर था। हट्टा-कट्टा कोई भी मजदूर बगैर साठ सत्तर पैसों के तो बात भी नहीं करता। साथ-साथ इसके मुझे एक तरह से इसे काम देना ठीक भी लगा। जितनी इसके शरीर में ताकत नहीं है उससे कहीं बढ़कर जरूरत जरूर होगी। मैंने महसूस किया और बुला लाया।

इस तमाम बात की गणित से, अपने काम के औचित्य अनौचित्य से दिमाग हटाकर मैंने उसके चेहरे को देखा– ढीला झुर्रीदार। उगे हुए अनियमित बाल। भूख और समय की छाप लिये। थोड़ी सी ताजगी न जाने कहां से उसने

आ गई थी इस वक्त। उसने तेज सांस ली। मुझे लगा जैसे सारे कमरे की हवा खत्म हो गई है।

–तो ये है वो ट्रंक जिसे ऊपर के कमरे में रखना है।

किसी रहस्योद्घाटन की तरह मैंने अपनी बात उसके सामने रखी। उसने बात उठाकर हूं भर दी। सन्तोषपूर्ण 'हूं' वह अपने हाथो को तोलने लगा। उसने बाहें ऊपर चढ़ाने के लिये हाथ एक दूसरे पर फिसलाए जब कि उसकी कमीज की बाहें पहले ही से फट फटाकर आधी रह गई थी।

उसने हाथों को पूरे मर्दाने तरीक़े से ट्रंक की ओर बढ़ाया। मैं उन निर्णायक क्षणो को एकदम क़रीब से देखने लगा। क्षण बीते। ट्रंक के उठने के बजाय एक मरी हुई आवाज उठी। उसकी ज़ुबान से। दम फूलने लगा। सांसो का सिलसिला तेज हो गया।

–है भारी—बाबूजी—

वह बड़बड़ाया। इस बार उसने टांगों को कुछ चौड़ा कर लिया। अबकी बार मैंने नोट किया कि उसकी और मेरी पेन्ट का कपड़ा चन्द बाहरी फरकों के अलावा मूलतः एक ही था।

उसने हाथ फिर ट्रंक के दोनों सिरो पर टिका दिये। अगले ही पल उसने ट्रंक को उठा दिया। मैं एक टक देखने लगा। खुशी से। सन्तोष से और थोड़े आश्चर्य से जैसे वह कोई जादूगर हो और कोई करतब दिखा रहा हो।

–चलिए—

उसके गले के काफ़ी नीचे से आवाज़ आई। बोझ-ग्रस्त आवाज। हम चलने लगे। मैं आगे-आगे और वह मय ट्रंक पीछे-पीछे। कुछ निर्णायक और संकटपूर्ण क्षण फिर आए। सीढियां चढ कर वह उन क्षणों को पार कर गया। तकरीबन चार बड़ी-बड़ी शाबाशियां मैंने उसकी पीठ पर चिपका दी। उसकी सांस इस बार खूब तेज़ हो गई थी। चेहरे का रग आहिस्ते-आहिस्ते बदलने लगा था।

–यहां रख दो।

जगह बताते हुए बडी आजीज़ी से मैंने कहा। जैसे कोई पिता लाड़ले बेटे को कांच का बड़ा सा बरतन सावधानी से रखने को कहता है। उसने बताई जगह पर पूरे आत्मविश्वास से ट्रंक रख दिया। मैंने एक बार फिर काफ़ी सन्तोष अनुभव करते हुए मौखिक शाबाशी दी। एक–दो–तीन–चार— क्षण गुजरने लगे।

वह यथावत् था। ट्रंक पर झुका। जड़ हालत में। मैं स्थिति समझने की कोशिश करने लगा। उसके करीब गया। छूता, इसके पहले ही वह ट्रंक के एन आगे धम्म की एक ध्यानाकर्षक आवाज के साथ लुढ़क गया। टोपी के नाम पर पहना हुआ काला सा कपड़ा एक ओर गिर पड़ा और उसके शरीर से हलचल जैसे कहीं गायब हो गई। अचल। एकदम शव की मानिन्द वह पड़ा था। मैं समझ नहीं पाया क्या करूं आखिर। झट से मैंने उसके हाथ को अपने हाथों में लेकर हिलाया। कुछ नहीं हुआ। उसके चेहरे को हलके हलके डुलाया तो भी कोई फर्क नहीं पड़ा— उसकी स्थिति में। वह निश्चल पड़ा था। पूरे कमरे का दृश्य मेरे आगे था। मैं असहाय और अजीब हालत में खुद को महसूस करने लगा। भाग कर नीचे गया और एक गिलास ठण्डा पानी लाया। उसके चेहरे पर पूरे विश्वास के साथ छीटे दिए लेकिन कोई बदलाव नहीं आया। वह ज्यों का त्यों था। मैंने फिर उसके चेहरे पर कुछ तेज गति से छींटे दिए। गालों पर। आंखों पर। माथे पर। कोई खास फर्क नहीं पड़ा— मामूली सी एक दो शिकनों के बनने बिगड़ने के अलावा। क्षण भर के सोच विचार के बाद आंगन में खेल रहे मुन्ने को आवाज देकर मैंने बुलाया और चार आने देकर बर्फ लाने को कहा। बर्फ आ गई तो मैंने उसके हाथों और तलुवों पर मली। माथे पर मली। वह था कि ठीक हो ही नहीं रहा था।

क्षण गुजरते गये और मेरी चिन्ता क्षण दर क्षण बढ़ने लगी। आखिरकार दूसरा कोई उपाय न देख, फीस के तौर पर दो का एक नोट दे, मुन्ने को भेज मैंने नुक्कड़ वाली प्राइवेट डिस्पेन्सरी के पच्चीस साल पुराने डाक्टर को बुलवाया। जानता था, बगैर दो रुपए फीस के वह अपने बाप के घर भी दवा देने नहीं जाता।

उस मरीज, मेहमान, मजदूर को उठाकर मैंने एक दरी में कुछ करीने से लिटाया और पूरी आत्मीयता से उसको पंखा करने लगा।

जैसे तैसे डाक्टर आया। नब्ज, धड़कन देखकर मुआयना किया और स्लिप पर डाक्टर ने कुछ लिखा। बताया कि इन्जेक्शन लगाना पड़ेगा। इन्जेक्शन दुकान पर ही मिल जाएगा। दो रुपये में। मैंने मुन्ने को एक बार फिर एक और दो का नोट देकर दौड़ाया। तीसरी या चौथी बार। मैं अपने इस एक और दो के नोट के बारे में सोचने लगा। पर डाक्टर का चेहरा दो रुपए के नोट से ज्यादा गम्भीर था और उस मजदूर की हालत नोट के महत्व से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। मैं इस तमाम को स्वीकारने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था और मैंने वही किया जो मैं कर सकता था।

मुन्ना परचे में लिखा हुआ—ले आया। डाक्टर ने सामान तैयार किया और इन्जेक्शन लगा दिया। मुझे लगा जैसे कोई खूब तीखी चीज मेरे शरीर में भी चुभ रही है। बर्फ की हल्की मालिश का बोल कर और सारी स्थिति की ब्योरेवार जानकारी लेकर डॉक्टर चला गया। डॉक्टर को देखकर आसपास के दो चार लोग वाक़यात की पूरी खबर लेने चले आए थे। मैं जहां तक बन पड़ा, जवाब देने की कोशिश करने लगा। उनके प्रश्न बढ़ते जा रहे थे और मेरी मुश्किलें। लगता था जैसे कोई जांच आयोग घटना स्थल पर ही गठित हो गया है। आखिर लोग चले गए।

मैं तमाम स्थिति के बारे मे सोचने लगा। अब तक मेरे छह सात रुपये खर्च हो गए थे। इतने धन से तो मैं ट्रक दूसरे कमरे के बजाय, दूसरे शहर आसानी से भेज सकता था। देर गुज़री। मैं सेवा कर रहा था। लगातार। फिर देर गुजरी।

उसने मन्द मन्द आंखें खोली। मेरे मन में शान्ति जगने लगी। उसने अपनी छोटी और मिचमिची आंखें पूरी खोल दी। थोड़ी ही देर में वह उठ बैठा। थोड़े से सम्वाद हमारे बीच जनमे। जाहिर था कमजोरी की वजह से सब हुआ। मुझे यह भी पता चला कि वह कल ही बुखार से उठा था।

—खैर सब ठीक हो गया।

मैंने कहा और राहत की सांस ली। उसका चेहरा किसी नासमझ बच्चे की तरह भावहीन था।

हवा बह रही थी और धूप खूब चमकदार हो गई थी।

वह उठा और थोड़ी ही देर मे विदा हुआ। अचानक उसके पांव दहलीज से बाहर होते होते रुके। मेरी तमाम चेतना उस पर केन्द्रित हो गई। दो पल वह खामोश रहा। मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी।

—बाबूजी—वो तीस पैसे—

उसने एकदम सरल और स्वाभाविक तरीके से कहा।

मैं उसे ऊपर से नीचे तक देखने लगा। वह अभी भी पूरी सरलता से खड़ा था और अगले ही क्षण मेरे हाथ जेब मे तीस पैसे तलाशने लगे। □ □

व्यूह

□

राम जैसवाल

'व्यूह'

आँख ठीक छह बजे ही खुल गई थी, फिर भी रजाई ओढ़े बिस्तर में पड़ा रहा। लेटे लेटे ही सरक कर रेडियो ऑन कर दिया। सीलोन सुनता रहा। बच्चे आकर उसके ही पास रजाई में घुस आये थे। आँगन में सामने की दीवार पर आयताकार मखमली धूप का टुकड़ा चमकने लगा, तो वह समझ गया कि साढ़े सात या पौने आठ का समय हो गया होगा, सो उठ पड़ा। इस घर में बस यही पहली और आखिरी धूप आती है। चाय पीकर उठा, तो नौ बज रहे थे।

'कुछ मंगाना तो नहीं है बाजार से।'

'पहले शेव नहीं करेंगे ?'

प्रश्न सुन कर एक बार चेहरे पर हाथ फिराया। शेव बढ़ आयी है, फिर भी कहा— नहीं, छुट्टी है, कर लूँगा।' छुट्टियों का इतना लाभ तो होता ही है कि सभी काम आराम-आराम से मन के अनुसार निपटा सकते हैं। अखबार आ गया है, लेकर बाहर धूप में, गली में आ बैठता है। यद्यपि म्युनिसिपेलिटी की नालियों से माउंटेड गली सदैव गंधाती रहती है, पर अब वह गंध सहज हो गयी है। धूप भी वही आती है। धूप में आकर अखबार ले कर बैठ गया। हैड लाइन्स पढ़ कर फिर फिल्मी पन्ना देखता है। किस किस टॉकीज में कौन-कौन फिल्म लगी है। वहाँ से भी मन हट जाता है, तो धूप की तेजी से आँखें छोटी करके गली में सामने देखने लगता है। गली आगे चल कर करीब पचास गज पर बाँहें फैलाती है। यही चौराहे पर सेठ धीमूलाल का नया मकान बन रहा है। उसके देखते देखते सारे मोहल्ले में नये नये मकान बन गये हैं, जो एक मंजिल थे, वे दुमंजिले हो गये। लोगों ने फ्लश लेट्रिस लगवा ली है पर वह जहाँ है, उसी पुराने किराये के मकान में है। बिना छज्जों का मकान, टूटी किवाड़ों की लैट्रिन। मकान तिमंजिला, नीचे के कमरे अंधेरे सीलन भरे।

पिछली बार जीजी आयी थी बड़ी वाली। एक दिन खूब लड़ी थी— 'तुम तो जिन्दगी भर ऐसे ही रहोगे मुक्ख, तनखा मिली, बीस दिन में उड़ायी चाटी, पेट से हाथ पोंछ लिये, ऐसे ही किराये के सड़े टूटे मकानों में जिन्दगी

काटो। उसे देखो रोशनलाल को, तुमसे कम तनखा की नौकरी, और मकान बनवा लिया कि नही। तुम लोग तो बस फैशन मे मरे जाते हो।' फैशन के नाम पर वह अपनी कमीज, पैंट देखने लगता है। कमीज का कालर कट गया है और पैंट पर धुलते धुलते धागे सफेद पड गये हैं, सारी सिलाई चमकने लगी है। जेब मे से सिगरेट निकाल कर पीने लगता है।

छोटा आकर मूढ़े के पास खड़ा हो गया है। फिल्म वाले पेज पर किसी एक्ट्रेस के चेहरे पर उँगली रख कर पूछ रहा है– 'ये बुआ है पापा जी, ऐ पापा जी। ये बुआ है आप कब बुलायेंगे इन्हें अपने घर।' वह चुप उसे देखता है। अक्सर ही जब पत्नी पास खड़ी या बैठी होती है और कहीं पत्रिका या अखबार मे किसी एक्ट्रेस का फोटू निकल आता है तो वह छोटे से कहती है– देखो छोटे, तुम्हारी बुआ जी। वह कहा करता है ऐ, नही ये गलत बताती है, ये मौसी है, मौसी तब से छोटा मुझसे कहेगा– ये बुआ जी है, पत्नी से कहेगा– मौसी जी है।

खाना बन गया है। अंदर से आवाज लग गई है। वह मूढ़े को अपने पीछे चिपकाये अदर चल देता है। छोटा भी साथ खाने को गोद मे बैठ गया है। ऋषि आगन में लट्टू नचा रहा है। आठ दस साल का हो गया, पर पढने का मन नही होता इसका। वसो स्कूल भी यो ही है बस।

'सुनिए जी।'

'क्या'

'दाल में घी थोडा डाले देती हूं, रोटी नही चुपडती। खत्म हो आया है, अभी तनखा मिलने मे तो दस पन्द्रह दिन है और ऋषि बिना घी के मन से नही खा पाता। बस चुपचाप उठ जायेगा।'

छोटा अखबार लिये गोद मे बैठा है। कह रहा है –, ये बुआ, ये मौसी, ये बुआ, ये मौसी।

'देखो, बड़ी जीजी आयी नही टाल दिया–फिर आऊंगी।'

छोटे के होने में आयी थी। और छोटा पाच साल का हो गया। पाच साल का हो जायेगा, तो कथा कराउंगा तभी बोला था। तभी जीजी एक दिन गुस्सा हुई थी–ऐसे ही रहोगे, तो कौन आयेगा तुम्हारे यहा, अपने किराये से आती हूं अपने किराये मे जाती हूं, वो तो मेरा ही मन नहीं मानता, सो चली आती हूं।'

खाना खा कर उठ पड़ता है, कुल्ला करके दांत कुरेदता रहता है। उसके उठते ही रेखा और मधु दोनों लड़कियां आसन पर टूट पड़ी हैं, जैसे उसके उठने को कब से ताक लगाये थी। रेखा बड़ी है पर हर बात में नकल करेगी छोटे की। अब तुतला कर बोल रही है। छोटे की तरह गोद में बैठना चाहेगी। जीजी कहती थी—तेरी ये दोनों छोरी तो यों ही हैं, भुस बिलकुल। इस बार जीजी को किराया भेज दिया था। लिख दिया था कि मैं आ नहीं पा रहा हूँ, चालीस रुपये किराये के भेज रहा हूं। जीजा जी को साथ लेकर आ जायें। पर वे आयी नहीं, चिट्ठी भेज दी थी। लिखा था—तेरे जीजाजी की तबियत ठीक नहीं है, फिर कभी आ जाऊँगी। न होगा; तो दिसम्बर में आ जाऊँगी, तब तेरी भी दो चार दिन की छुट्टियां होती हैं और किराया काहे को भेज दिया, मैं वैसे नहीं आयी क्या कभी, कल चिट्ठी आयी। लिखा है—अभी भी नहीं आ पा रही हूँ। तेरे जीजा जी बिज़निस के सिलसिले में बाहर जा रहे हैं।

आ जाती तो छुट्टियां थी इस बार शहर ठीक से घुमा देता। पिछली बार वे यों ही खिसियायी सी लौट गयी थी कि इतना पैसा तोड़ कर तो आती हूँ और तुम ठीक से शहर की दो चार मशहूर जगह भी नहीं दिखा सकते। पर क्या करता, तब छुट्टियां ही बाकी नहीं बची थी।

पड़ोस के घर से तेज आवाज में फौजी भाइयों के लिए फिल्मी गाने आ रहे हैं। कोई एक्ट्रेस बड़े फिदा होने के लिहज़े में एनाउंस कर रही है। गाने देर से चल रहे हैं, लगता है, तीन तो बज ही गया होगा।

तैयार होने लगता है।

'कहीं जा रहे है क्या ?'

'यों ही स्टेशन की ओर जा रहा हूं।'

साइकिल उठाता है तो पत्नी कहती है—बड़े बाजार से सब्जी लेते आइएगा, यहां तो ये ठेले वाले एक ही किलो पर चवन्नी ले लेते हैं, दूसरे ताज़ी नहीं मिलती है। वह साइकिल पर थैला टांग देती है।

मोहल्ला पार करके चौड़ी सड़क में मिल गयी है गली। सड़क के दोनों ओर बंगले बने हैं। एक बंगले में, बाहर लॉन में कुछ बच्चे कैरम खेल रहे हैं। स्कूल में वह कैरम का चैंपियन रहा है, पर वह चैंपियनशिप कहीं काम नहीं आयी।

शहर शुरू हो रहा है। एक दूकान पर सौ डेढ़ सौ आदमियों, बच्चों,

औरतों की लाइन लगी है। गौर से देखता है, तो पाता है— मिट्टी का तेल बिक रहा है। स्साला, अपने देश में यह कभी नहीं होगा कि चीज़ हो तो संकट के समय में तो लोग आसानी से दे दें या ले लें। सुनते हैं, चीनी भी राशन से मिलेगी— एक आदमी को ढाई सौ ग्राम।

सड़क पर भीड़ बढ़ने लग गयी है। पिछले पांच साल में इस शहर ने भीड़ बढ़ाने में कमाल किया है। बस बढ़ती हुई भीड़ और मकान किराया दोनों ही इस शहर के तरक्की करने के ठोस सबूत हैं। 'मार्टिन-ब्रिज' के पास वह साइकिल से उतर कर खड़ा हो जाता है। अब किधर जाये। दाहिने हाथ पर सड़क ढाल पर चली गयी है। टॉकीज दिखाई पड़ रहा है, अजंता टॉकीज। वह सिगरेट निकाल कर सुलगाता है। 'जोय बंगला देश' फिल्म के फोटो लगे हैं। भीड़ लाइन में, लॉन में इकट्ठी है। शेखर की बात याद आती है— इण्डिया में दो ही तबके के लोग रहते हैं। एक जो पैसे को मिट्टी बनाते हैं, दूसरे जो मिट्टी से पैसा बनाते हैं। एक परेशान, एक बेहद संपन्न। अब देखो सेना के लोग शहीद हुये, लोगों की जानें गयी, फिल्म वालों ने 'जोय बांगला देश' तमाशा बना कर दिखा दिया। भीड़ टूटी पड़ रही है।

साइकिल लेकर पैदल ही वह सड़क पर भीड़ के बीच चल पड़ता है। यों ही उद्देश्यहीन दूकानों पर टंगी चीजों को देखता है, होटलों के पास गुजरता है। सोचता है, कहीं बैठ कर एक चाय पी लें। पैंट की जेब में हाथ डाल कर अन्दर ही अन्दर हर सिक्के की बनावट पर हाथ फिराता रहता है, और अनजाने ही मुड़ कर सब्जी खरीदने लगता है। चाहता है, कुछ हरी सब्जी ले ले, पर एक किलो आलू एक किलो प्याज खरीदने के बाद धनिया या हरी मिर्च को भी पैसे नहीं बचते। चुप, साइकिल से घर लौट पड़ता है। फुटपाथ पर दर बिछाये कप प्लेट बेचने वाले बैठे हैं। घर पर अब साबुत तीन कप प्लेट भी एक से नहीं हैं, पर यह बात कोशिश करके दिमाग से झाड़ देता है। और लाटरी एजेंट की दूकान पर बज रहे लाउडस्पीकर के शोर को सुनने लगता है।

घर लौट आया है। दरवाजे से आंगन में दाखिल होकर देखता है, बरांडे में सब बच्चे वही पुरानी दरी बिछाये बैठे पढ़ रहे हैं। और उसे देख कर टेबल्स, स्पेलिंग्स और जोर-जोर से रटना शुरू कर देते हैं।

'खाना अभी खायेंगे या.. ..... ?'

'लगा दो' वह कपड़े नहीं उतारता और मुड्डा खींच कर यों ही बैठ जाता है।

'सब्जी क्या बनायी है ?'

'आलू, आप कुछ ले कर दे गये थे क्या ?'

चुपचाप खाता रहता है।

'सब्जी कैसी बनी है ?'

'ठीक है।'

'अच्छी नही है ?'

'अच्छी है'।

'मेरे कहने से कहा . कहां घूम आये आप ?'

'कही नही बस यो ही।'

'देखिये, चार दिन की तो कुल छुट्टियां हैं एक दिन यों ही गवां दिया आपने। कहीं चलेंगे नही घूमने'।

'कहां चलोगी ?'

'कही भी– पुष्कर, माहीसागर, या किशनगढ'

'चले चलेंगे।'

चारपाइयां बिछ गयी हैं और वह रजाई में पैर देकर बैठ गया है। बच्चे अभी भी एक दूसरे की गलतियों को लेकर बहस कर रहे है।

'क्या सोच रहे है आप ?'

'कुछ तो नहीं पर वह पाता है कि वह कुछ सोच तो रहा है। कुछ समझ नहीं पाता। बस लगता है, जैसे सारे दिन भर किसी से कुछ मागना या मिलना था और जिससे मिलना था, वह चेहरा याद नही आ रहा है, भूल गया है। अम्मा या बाबू जी जैसे बहुत हल्के, भूले सपने से याद आते हैं। हल्का सा याद आता है– एक बार अम्मा से खूब लड़ा था, इस बात पर कि छोटी जीजी को इस बार सावन में क्यो नही बुलाया। अम्मा चुप सब मेरा झुंझलाना झल्लाना सुनती रही थी। बाबू जी तब रिटायर हो गये थे, और बड़े भैया उसी वर्ष भाभी को लेकर सर्विस पर गये थे। अम्मा ने धीरे से कहा था– 'अब जब हम नहीं होंगे, तू नौकरी करे, तब बुला लिया करना', और सच ही तो छह वर्ष हो गये बाबूजी की मृत्यु को। तभी बरसी पर मिली थी। छोटी जीजी कह रही थी, 'अब तो तेरी तनख्वा बढ़ गयी होगी।'

'सुनिए ।'

'क्या ।'

'क्या सोच रहे हैं आप, ये देखिए, ये छींट खरीद ली आज फेरीवाले से मैंने, सस्ता पीस है ।

'कितने का है ?'

'साढे चार रुपये का है, डेढ मीटर । रेखा की कुर्ती सब फट गयी थी। गली मोहल्ले में निकलते, घूमते बुरी लगती थी, आप तो पता नहीं कब ला पाते . . ., पत्नी सहमी सी उसे देखती है ।

'ठीक है अच्छा है ।'

'एक पीस है और उसके पास, कहिए तो ले लूं .... मधु की भी बन जायेगी ।' उसके ठीक कहने से पत्नी को जैसे शह मिल गयी है। उसे फिर चिढ होती है, पर बस चुप रहता है। वह नहीं चाहता क्या कि बच्चों को अच्छा पहनाये, खिलाये, पर चार सौ रुपल्ली में क्या होता है ? अस्सी रुपये तो मकान किराया ही खा जाता है, और कितनी बार कहा है इससे कि ये गली में बेचने वाले क्या बेवकूफ है, जो फेरी भी लगायेंगे और बाजार से सस्ता भी देंगे। पर वह कहता कुछ नही है। उसके चुप रहने से ही पत्नी के चेहरे पर उभरा उत्साह फिर बैठ गया है । वह बार-बार कपड़े को उगलियो से खीच-खीच कर देख रही है ।

वह चुपचाप अखबार उठा कर खबरें पढ़ने लगता है । बच्चे सो गये हैं। वह बिस्तर मे पूरे पैर फैलाता है और पत्नी से कहता है- 'सोओ तब ये बड़ी लाइट ऑफ कर देना ।'

सवेरे उसे लगा, जैसे वह रात भर सो नही पाया है । पलकें सूजी सूजी सी हैं और एक अकारण का भारीपन सर पर है ।

चाय पीकर उठने लगा, तो पत्नी ने कहा, 'देख रहे हैं सवेरे से छोटे को छींकें आ रही हैं ।

'हां !'

'मैं जो रजाई ओढती हूं वह जगह-जगह से टूट गयी है, रुई के गोले कुरी पिल्ले से बन गये हैं ।'

'अच्छा !'

वह चुपचाप उठता है और अपनी रुचि की संग्रह की हुई पुस्तकों पर यों ही उंगली फिराता है।

'देखती हो कितनी धूल हो गयी है इन पर, पर तुम्हें इससे क्या, इतनी कीमती किताबें, सत्यानाश हुआ जा रहा है।'

किताब खोल कर झाड़ता है। बारीक मिट्टी सांस के साथ मुंह में आ जाती है। किताबें एक एक करके झाड़ता रहता है। बच्चे उसके पास आ कर इकट्ठे हो गये हैं। एक किताब में कुछ पुरानी चिट्ठियां निकल आयी हैं—पोस्टकार्ड, लिफ़ाफे। थोड़ी देर उन्हें पढ़ता रहता है। एक बड़ा पुराना पत्र संतोष का है, संतोष माथुर का। 'शैली' की पंक्तियां लिखी हैं— 'ओ विंड। लिफ्ट मी एज ए वेव, ए लीफ, ए क्लाउड, आई फॉल अपॉन द थॉर्नस् ऑफ लाइफ, आई ब्लीड; फिर लिखा है— आपको पता है, डैडी परसों किन्हीं सुल्तानपुर वालों से बात कर रहे थे। मैं दो दिन से दस बजे से ही बरांडे के सामने इजीचेयर डाल कर बैठे-बैठे चार बजा देती हूं। क्या किसी तरह से न आने के दो अक्षर लिख कर नहीं भिजवा सकते थे। अनिश्चितता की उदासी कितनी भारी होती है, समझ सकेंगे आप ? और.... वह पत्र बंद कर देता है।

संतोष को उन दिनों वह हिन्दी पढ़ाने जाता था। दोनों ने साथ-साथ ही अंग्रेजी में एम. ए. किया था। उसकी खुद की डिवीजन मामूली गिनती से रह गयी थी। उसने फिर हिन्दी से एम. ए. कर लिया था। वर्ष बाद संतोष मिली थी। कहा था, 'आप आ जाया करें, तो मैं डैडी से कह कर आपको ट्यूटर रख लूं। बैठी-बैठी क्या करूं, मैं भी हिन्दी से एम. ए. कर डालूं।

वह जाने लगा था। दो वर्ष लगातार ट्यूटर भी रहा है, रेजीडेंसी और बॉटनिकल-गार्डन में मूखे मेजेंटा के फूलों के आसपास धूप में बहुत घूमे हैं। घंटों किसी पेड़ के तने से सटे खड़े-खड़े बातें की हैं। पर क्या हुआ वह सब। तब सोचा था, कहीं लेक्चरर हो गया, तो डैडी से बात करेगा। बाबूजी और अम्मा को तो मना ही लेगा, पर वह लेक्चररशिप महत्वाकांक्षा हो रही। शहर बदलते, इन्टरव्यू देते-देते कई बार डिग्रियां फाड़ डालने को मन हुआ था। जितनी बार वह कॉपीज अटेस्ट कराने जाता डाक्टर साहब साइन करते-करते पूछते, 'क्यों वहां कुछ नहीं हुआ क्या प्रतापगढ़, और वहां हरदोई भी नहीं, कोई बात नहीं, बन शुड नॉट बी पेसिमिस्टिक, विश यू बेस्ट.... ।'

पर मिलनी थी यह पोस्ट, इस ऑफिस में ट्रांसलेटर की, इस प्राइवेट ऑफिस मे। वह सब चिट्ठियां समेट कर रख देता है।

'सुनिए। खाना बन गया है।'

'अच्छा आता हूँ।'

खाना खा कर वह तैयार हो रहा है। पत्नी ने आकर सोफ दी है।

'ओ हो, आज तो याद आ गयी तुम्हें।'

'हमें कहीं घुमाने नहीं ले जायेंगे ?'

'अटेची में कुछ नोट बचे हैं ?'

'पांच – छह होंगे।'

'चलो ऐसा करें, दोनों दोनों धूप में इस इस गली में पांच छः चक्कर काटे लेते हैं।'

'बस रहने दो, यो ही उडा देते हो, दोनो हंसते हैं। वह साइकिल ले कर बाहर आकर सोचता है, कहा जायें फिर, चारों ओर बांझ पहाड़ियां, बीच में बसा ये छोटा सा नगर।

'कब तक लौटेंगे ?'

'जल्दी ही आऊंगा, देखो वो किताबें लगवा देना अल्मारी मे।'

ऑफिस आ गया है। सब कमरे बन्द, उसका खुद का कमरा भी बन्द है अन्दर झांकता है, अन्दर मेज, कुर्सियां, घुप अंधेरे मे रक्खी हैं। बराडे में एक खिड़की पर दो कबूतर घूम घूम कर गूं ऽ ऽ गू ऽ ऽ, कर रहे हैं। लॉन मे डेलिया के फूल दमक रहे हैं और दूब बडी सुनहरी लग रही है।

'सलाम साहेब ! आज तो हुजूर ......?'

'हां छुट्टी है, यों ही आ गया बस।'

घूमते घूमते साइकल पर बैठ कर फिर सडक पर आ जाता है। बाजार में भीड है। चौराहे पर बायें हाथ को पत्थर लगा है— 'जयपुर रोड'। सडक पर मुड लेना है। इधर भीड कम है। यही एक गली मे मुड़ कर मौहल्ले में आ जाता है। नेम-प्लेट लगी है– 'वैरोचन मिश्रा,' फाटक खोल कर अन्दर आता है। ताला बन्द है। किससे पूछे वैरोचन उसके कस्बे का ही है। यहां मेम्रो कॉलेज में

लेक्चरर हो गया है। प्रतिष्ठित परिवार से है। उसको बेसिक एजुकेशन भी यहीं हुई थी।

'ए ! सुनों लड़के, ये लोग कहां गये हैं ?'

'ये बंगाली शाब।'

'हां, हां, ये ही।'

'शाब पहाड़ पर गये हैं, जाड़े की छुट्टिया है ना।'

विंटर-व्रेक्स मे भी पहाड पर। एक ठंडी सांस छोड़ता है। उसे धूप फिर उदास लगने लगी है। साइकल लेकर आगे सड़क पर आ गया है। आर. पी. एम. सी. का ऑफिस है और आगे बायें हाथ को सैंट्रल बैंक है। कुछ ठेले वाले खड़े हैं। मूंगफलियो के ढेर पर काली हंडिया धुआं देती रक्खी है। उसके नीचे की मूंगफली गरम होगी। अपनी जेब टटोलता है और सौ ग्राम मूंगफली ले लेता है। छील छील कर खाने लगता है।

'ये बैंक के मैदान मे क्या खुदाई हो रही है ?'

'ये साब और कमरे बनेंगे, जगा कम पड़ती थी।

'अच्छा ऽ ऽ।' वह खड़ा खडा मूंगफली खाता रहता है और काम करने वाले मजदूरों को– औरत-मजदूरों– को देखता रहता है। कसे हुए जिस्म और फटे हुये कपड़े।

वो झोपड़िया यहां से हट गयी ?'

'हां साब' उसे लगता है, बड़े नोट रक्खे हैं, हर अलमारी में गड्डियों की गड्डिया, और कोई उन पर डाके डाल रहा है। वह झटका देकर स्वय को सामान्य करता है और दूसरी ओर चल देता है। एक पोस्टर लगा है– 'सारा आकाश'। कोई सोसायटी है– 'कला योग,' उसने ऐरेंज किया है। लिखा है–मात्र परिवारों के लिए। कृपया छोटे बच्चो को साथ न लायें। सोसायटी ने एरेंज कर दिया सो ठीक, वरना इस शहर में ऐसे टेस्ट के लोग कहाँ, कि टाकीज वाले 'सारा आकाश' मंगवायें। 'दस्तक' की ही लोग कितनी बुराई करते है। यदि उसमें पति–पत्नी का इतना रोमांस न होता, तो शायद स्टूडेंट्स भी न देखते।

'सारा आकाश' वह नही देख पायेगा। हालांकि छुट्टी है, पर एक तो पर्स खाली, दूसरे पत्नी के नखरे। अभी राजेश खन्ना या देवानन्द की कोई स्टंट फिल्म होती, तो कटौती करके छुपाये गये पैसे तुरंत निकल आते।

घर वाली गली आ गई। वह गली में मुड़ लेता है। और कहां किसके यहां जाये। सभी कोई कहीं न कहीं गये हैं। चार दिन की छुट्टियां एक साथ कहा मिलती है। पत्नी दरवाजे पर फिर किसी फेरी वाले से कुछ तै कर रही है, और भी स्त्रियां हैं उसे दूर से ही पत्नी ने देख लिया है और धीरे से उस ग्रुप से अलग हो गयी है।

'आ गये।'

'हा।'

'क्या खरीद कर रही थी ?'

'कुछ नही, मैं तो यो ही देख रही थी।'

अच्छा 'देखो।'

अंदर वे किताबें सब ज्यो की त्यो पड़ी हैं, जिन्हें वह रखने को कह गया था। बाहर आंगन में रेखा और मधु कोयले से लाइने खींच कर इकटंगी खेल रही हैं। वह रेडियो छूता है, बारीक धूल उसकी उंगलियो में लग गयी है। छोटा आ कर उससे लिपट गया है। सब धूल मिट्टी में हो रहा है।

'सुनो ऽऽ।'

'हां, क्या चाय बना दूँ ?'

'क्या बजा है अब ?'

वह घड़ी देखती है, 'चार बजे हैं।'

'ये बच्चे सारे दिन . ।'

'अभी ठीक कर रही हूं।'

'और वे किताबें ?'

'अभी रखवाये देती हूं।'

'अब तो रख लूंगा मैं तुमने क्या किया ?' गुस्से मे किताबों को जोर से पटकता झाड़ता है।

पत्नी चुपचाप पास खड़ी है।

'जाओ न। अब यहां क्या मेरी शक्ल देख रही हो।'

'लाओ मै रख दूँगी।'

'जाती हो कि नही।' उसे बहुत गुस्सा आ गया है। पत्नी चली गयी है। रेखा और मधु आंगन मे चुपचाप खड़ी हो गयी हैं। किताबें लगा कर वह चुपचाप

बाहर चबूतरे पर आ कर खड़ा हो गया है। लग रहा है, उसे तो आखिर तक यों ही रहना है— अपरिचित और बेमेल स्थितियों के बीच।

'चाय ले लीजिए।'
'नहीं पीनी मुझे।' पत्नी चाय लेकर खड़ी है।
'कहा न नहीं पीनी।'
'ठंडी हो जायेगी फिर।'
'मैं फेंक दूंगा कप अभी सड़क पर।'

चुपचाप पत्नी चली गयी है। वह दमासे गले से अन्दर मुड्डे पर बैठ जाता है। बालों पर हाथ फेरता रहता है। फिर उठ कर गली में आ जाता है। सामने गली के आखिर में दिखाई पड़ते पहाड के उपरी हिस्से पर किसी पुराने किले की टूटी दीवारें आसमान में टेडी मेड़ी लाइन बना रही है और उडती धूल उस पर लग रही है।

वापस वहीं कमरे में लौट आया है। आंगन में पत्नी कोयले के चूरे के लड्डू बना रही है। लगता है, फिर कोयले खत्म होने को आये हैं वह चुपचाप अलमारी में से उपन्यास निकाल कर पढ़ने बैठ जाता है। मन नहीं लगता, उठ कर पान खाने चल देता है।

लौट कर आया है, तो पत्नी ने चिट्ठी दी है, 'आज की डाक में ये जेठ जी का पत्र आया था।' चिट्ठी पढता है। बड़े भैया ने लिखा है— छुट्टियों मे यहां घूम जाओ, पढ़ कर चुप बैठा रहता है। लखनऊ और यह शहर चालीस घण्टे का रन और एक तरफ से बहत्तर रुपये किराया। वह चुपचाप कोट उतार कर हेंगर पर टांग देता है। पैन्ट उतारता है। इन छुट्टियो में ही यह कोट वह दर्जी को दे देगा, पलटवा लेगा। पुराना और घिसा दिखाई पड़ने लगा है सूट।

रात को सोया, तो जाने कब से ऐसा लगता रहा कि कोई लगातार घुटनों और हथेलियों के बल भगा रहा है। हथेलिया और घुटने छिल गये हैं। खून झलक आया है, सर उठाता है, तो किसी भारी चीज से टकरा जाता है फिर पाता है, जहां उसे रोका गया है वह स्टेशन है। बहुत सी गाडियाँ तेजी से आ जा रही हैं। छिले हुए हाथों से वह गाडी पकड़ने का साहस नहीं कर पा रहा है, पर इस भय से कि गाडी छूट न जाये, झटके के साथ वह एक कंपार्टमेंट मे गिरते बचते चढ़ गया है। गाडी तेज चल रही है। सारा कंपार्टमेंट खचाखच भरा हुआ। उसे इन लोगों को देखकर बड़ी अरुचि होती है।

'कहां जायेंगे आप ?'

'जलालाबाद ।'

'वहा तो यह गाड़ी नही रुकती ।'

'तब ?'

'यह तो अब शाहजहांपुर ही रुकेगी ।'

बाहर खिड़की से झांकता है, कोहरा धुआं-धुआं सा छाया है। बर्फीली हवा से लगता है, उसका चेहरा छिल जायेगा।

'अरे। स्यूसाइड करेंगे क्या ?'

'सुनते नही हैं, सुनते हैं, सुन नही रहे हैं ...।'

'अरे क्या है।' पत्नी जगा रही है उसे।

'क्या है ?'

'कहां क्या है ?'

'क्या कह रहे थे ?'

'कह रहा था...., क्या कह रहा था ?' जीरो का बल्ब रोशनी दे रहा है। बच्चे सो रहे हैं. छोटा पत्नी की रजाई मे 'उ' बना पड़ा है। पत्नी की आंखें भारी और लाल हो रही हैं।

'क्यों जगाया मुझे' वह उसे अर्थपूर्ण दृष्टि से देखता है।

'नही वो बात नही, आप कुछ सपना देख रहे थे क्या ?'

'नहीं .., ऍं .., हां.... ऽऽ। परसो आफिस खुल जायेगा। कल चलना पार्क मे, बच्चो को ले चलेगे।'

वह पत्नी को धीरे से अपने बिस्तर पर खींच लेता है।

'अरे ये मेज़ पर कप में क्या ढका रखा है ?'

'यही आपकी चाय रखी है।'

'अच्छा सवेरे गरम कर देना।'

'अच्छा कभी दो मिनट रखी चाय पी है ?'

वह चुपचाप आंखों में मुस्कराता है, और दोनो रज़ाई ओढ़ लेते हैं।

□ □

शराबघर

□

हबीब कैफ़ी

शराबघर

मैंने माहौल का जायजा लिया। मुझ से थोड़े फ़ासले पर एक शख़्स अपनी धुन में पी रहा था। मेरे सामने खस्ता-सी टेबल पर सोडे की बोतल 'गुलाब' और गिलास के अलावा सिगरेट का पैकेट और माचिस रखी थी। नियमित ग्राहकों के आने का वक्त क़रीब था। काऊँटर पर कलाल का नौकर अगरबत्ती जलाने के बाद तन्मय-सा होकर बैठ गया था। परिचित-सा तेरह-चौदह साल का छोकरा सिके हुए पापड़ की टोकरी लिये हुए एक तरफ़ खड़ा था।

बरसों पहले मैंने एक लड़की से रोमांस लड़ाया था। वह अच्छी थी। मैं उसी को अपने तसव्वुर में ले आने की कोशिश कर रहा था। लेकिन बात बरसों पुरानी होने के कारण उसकी शक्ल मेरे ज़ेहन में नहीं उभर रही थी। अपनी कोशिश नाकाम होती देख मैं झुंझलाने लगा था। इसी आलम में बाकी बची हुई 'गुलाब' बिना सोडे के मैं एक ही घूट में पी गया। मुह का जायक़ा अजीब-सा हो आया तो उस छोकरे को क़रीब बुला कर मैंने एक पापड़ ले लिया। मेरा दिमाग़ अब बड़ी तेजी के साथ काम करने लगा था। रोमांस वाली वह लड़की अब स्वतः ही मेरी कल्पना के घोड़े पर सवार हो गयी थी। मैं खुश था। खुशी के मारे मैंने पापड़ वाले छोकरे को क़रीब बुला कर दस पैसे का एक सिक्का उसकी तरफ़ बढ़ा दिया।

'पापड़ के पैसे आप दे चुके हैं, बाबूजी!' उसने कहा।

मैंने खुद को संभाला। मुड़ कर मैंने उस दूसरे पीने वाले की तरफ़ देखा। वह शायद मुस्करा रहा था।

'रख ले.... एक और दे दे।' खिसियाहट मिटाने की ग़रज़ से मैंने कहा।

टेबल पर मेरे आगे एक और सिका हुआ पापड रखने के बाद वह टोकरी समेत पहले की तरह अपनी जगह पर जाकर खड़ा हो गया।

ऐसा नहीं होना चाहिये— मैंने खुद से कहा। पीने के लिए बैठने से

पहले किया गया वादा तुम क्यों भूल जाते हो ? और फिर यह एक ग्राम जगह ही तो है।

'अच्छा-अच्छा।' मैंने धीरे से कहा तो पापड़ वाले ने मेरी तरफ़ देखा। वह समझ गया था कि मैं तरंग में हूँ। इस बार मैंने उस अजनबी पीने वाले की तरफ देखना मुनासिब नहीं समझा। मैं सिगरेट जला कर लम्बे कश लेने लगा। गले में खरखराहट-सी होने लगी थी।

मुझे अपनी खिसियाहट से उबरने का मौक़ा जल्दी ही मिल गया। मेरा एक परिचित वहां आ गया था। उसने मुझे अभिवादन किया। मैंने मुस्करा कर उसे उत्तर दिया। वह काऊंटर पर शराब लेने लगा था। इस वक्त तक खुद को मैंने अपने वादे के मुताबिक बना लिया था। रोमास वाली वह लड़की अब मेरे जेहन में नहीं थी। मेरा वह परिचित सोडे की बोतल, गिलास और 'हरी' का लीटर लेकर मेरे सामने ही जम गया था।

'पापड खाओ।' मैंने उससे कहा।

'आपके गिलास में थोडी चलेगी ?' उसने पूछा।

जवाब न देकर मैंने सिगरेट का कश लेना ही उचित समझा। 'देवी' के नाम पर शराब के कुछ कतरे गिराने के बाद उसने थोड़ी-सी मेरी गिलास में ढाल दी। इसके बाद उसने अपना पेग बना कर 'चीयर्स' कहा तो मैं हँसते-हँसते रुक गया।

अपने उस परिचित की इनायत की हुई शराब एक ही घूट में पी लेने के बाद मैंने उसकी तरफ देखा। वह सहज-सा था। मैं निरन्तर उसकी ओर देखने लगा।

'कभी-कभार थोडी-सी ले लेता हूँ।' उसके लिए कुछ बोलना जरूरी हो गया था। वह कहने लगा, 'वरना मुझे पीने की आदत नहीं है।'

'होना भी नहीं चाहिये।' मैंने कहा, 'मुझे भी सिर्फ शौक है .... पियक्कड़ मैं भी नहीं हूँ।' मैंने झूठ बोला। संभवतः उसने भी मेरी तरह कहा था।

'मुझे भी है।' फासले पर बैठा वह अजनबी अचानक चहका। हम दोनों ने उसकी तरफ़ देखा। वह अपने स्थान से उठ कर गिलास समेत हमारे

नज़दीक आ गया था। वह कहने लगा, 'हम पीने वालो को दरअसल वहकने वाले बदनाम करते हैं।' वह हँसने लगा था।

मेरा वह परिचित उसे इस तरह चहकते देख मुस्कराने लगा। मैं भी उसका साथ देने की कोशिश करने लगा था। मेरी निगाह उसकी शराब पर थी।

'क्या बताऊँ साहब। औरत का कोई भरोसा नही ...।'

हम उसकी तरफ नहीं देख रहे थे। मैं समझ नही पा रहा था कि वह अजनबी किस से मुखातिब है।

'लेकिन शायद मैं गलत कह गया। .... हुआ यूं कि लड़की का बाप आड़े आ गया। और ... ...।'

'और देवदास बनने के लिए तुम्हे छोड दिया।' काऊंटर पर नये आये एक खुशपोश ने जुमला पूरा कर दिया तो वह 'हो-हो' कर हँसने लगा।

मैं थोड़ी देर बाद अपने सामने जमे हुए परिचित की शराब की तरफ देख लेता था। वह खामोश था। हमारे नज़दीक खिसक आया वह दुबला-पतला अजनबी अब चुप था। शराब लेकर वह खुशपोश हमारे करीब आ गया। शिष्टतावश मैंने उसके लिए बेंच पर थोड़ी जगह छोड़ दी थी।

'यह फ़र्ज़ी किस्सा तुम यहा कितनी बार किस-किस को सुनाओगे?' खुशपोश ने बैठते हुए उस दुबले-पतले व्यक्ति को मुखातिब किया। उसके संबोधन मे स्पष्ट था कि वे एक-दूसरे को जानते हैं।

'तुम्हें यह फ़र्ज़ी किस्सा लगता है?' अजीब तरह से हाथ लहरा कर उसने खुशपोश से कहा। उसे नशा हो चला था।

'बिलकुल।' जल्दी से पेग बना कर शराब गटकने के बाद खुशपोश ने बीडी जलाते हुए कहा।

'कैसे?'

'तुम पीकर बहक रहे हो! ...बरसो मे तुम्हारी यही पुकार मैं रोज शाम यहा सुन रहा हूँ।' उसने शराब का एक घूंट और लिया।

'मैं बहक रहा हूँ? .... लो सुनो।'

उसने किसे मुखातिब किया, यह मैंने नही देखा। मेरी निगाह मेरे

परिचित की शराब पर जमी थी। बाद में संभवतः वह मेरी नीयत भांप गया, अतः बाकी बची हुई शराब एक ही घूंट में पीकर वह जाने के लिए उठ गया। यह देख कर मुझे एक अजीब-सा धक्का लगा।

'पापड़ खा लो ... मुंह कड़ुवा हो गया होगा।' मैंने कहा।

उसने अजीब निगाहों से मेरी तरफ देखा और शुक्रिया कह कर तेज़ तेज़ कदमों से चला गया।

पांच-सात मिनट बाद मुझे जब इस बात का इत्मिनान हो गया कि वह परिचित लौट कर इस वक्त नहीं आयेगा, मैंने उठ कर काउंटर से ढाई रुपये की शराब और ले ली। मेरी जेब में अब सात रुपये और कुछ छोटे सिक्के रह गये थे।

खुशपोश और वह दुबला-पतला व्यक्ति बातें कर रहे थे। मैं उन दोनों से निरपेक्ष-सा फिर पीने लगा था।

बरसों पहले के रोमांस वाली वह लड़की फिर मेरे तसव्वुर में आना चाहती थी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मेरे सामने एक सड़क छाप गवैया अपने हारमोनियम सहित आकर बैठ गया था। दारू का गिलास उसने हारमोनियम के पास रख लिया था। उसके चीकट लम्बे-लम्बे बालों में दाहिनी तरफ एक छोटी-सी काली देशी कंघी फंसी हुई थी। उसकी आंखें मैली और बुझी हुई-सी थीं। उसके बैठे हुए गाल खमखसी दाढ़ी से सटे हुए थे, जिन पर उसकी अजीब तरह से इतराती हुई मूंछें थीं। उसकी मूंछों पर नकली होने का गुमान होता था। वह कुर्ता और धोती पहने हुए था। उसकी उंगलियों में तांबे और अन्य धातुओं की छल्लेनुमा अंगूठियां फंसी हुई थीं। वह तीस का रहा होगा। कुल मिला कर वह ठेठ गवार और उजड्ड लग रहा था। उसे देख कर मुझे लगा कि मेरा सुरूर उतर रहा है। मुझे उबकाई-सी आने लगी थी। सिगरेट जला कर मैं खुशपोश और उस दुबले-पतले व्यक्ति की तरफ ध्यान देने लगा था। वे बातें कर रहे थे। खुद को मैं उनमें शरीक कर लेने की तरकीब सोचने लगा था। इतने में खुशपोश ने गवैये को मुखातिब किया।

'सुना भई, कोई चीज़।'

'जो हुक्म, अन्नदाता।' गवैया शिष्टता से बोला, 'क्या' सुनाऊं?' बाद में उसने हँस कर मुझे मुखातिब किया तो मेरी निगाह उसके पीले दांतों पर जम गई। मेरा मन अजीब सा हो आया था। मैंने उत्तर नहीं दिया।

'थारे हिवड़े जच्चे जिको ईज सुणा दे। ... पण हुवे तबीयत री चीज।' (तेरे जो जी मे आये सुना दे, लेकिन तबीयत की चीज हो) खुशपोश ने तरग में आकर राजस्थानी में उससे कहा।

'यह क्या सुनाएगा ? ख़ाक ?' दिल ही दिल मे कहने के बाद मैंने शराब का एक घूंट लिया।

बीड़ी के दो-चार लम्बे लम्बे घुट खीचने के बाद गवैये ने खगार कर अलापना शुरू किया। लय मिलते ही वह गाने लगा—

फूल खिलने के महीने आ गए,
ये सुना तो हम भी पीने आ गए।

गज़ल ! मैंने चौंक कर उसकी तरफ देखा। उसके प्रति मेरे मन मे जो नफरत सी पैदा हो गयी थी, एक ही झटके में खत्म हो गई। मैं गौर से सुनने लगा। मेरे नजदीक अब उसके हुलिये का कोई महत्व नही रह गया था। उसकी आवाज़ मे मिठास थी। उसका उच्चारण एकदम सही था। यह देख कर मुझे खुशी हुई। अनायास मेरे मुँह से 'वाह' निकल गई। खुशपोश अपने तरीके से गवैये को दाद दे रहा था। उसका साथी वह दुबला-पतला भी लहराता हुआ आनन्दित हो उठा था। वे दोनो उस से बार-बार यह शेर गाने के लिए कह रहे थे। और गवैया कृतज्ञ-सा पूरी तन्मयता से गज़ल गा रहा था। वह आगे बढ़ा —

तल्ख़ि-ए अय्याम तेरा शुक्रिया
हम को जीने के करीने आ गए।

इस शेर की पहली पंक्ति का अर्थ सभवतः वे दोनो नही समझ सके थे, फिर भी वे उसी तरह 'वाह-वाह' और 'जिओ' कह रहे थे। गवैये को मैं तारीफी निगाहों से देख रहा था। वह पूर्ववत् गा रहा था—

देख कर तुझ को चमन मे गुलबदन
एक-इक गुल को पसीने आ गए

नाखुदा सोए रहे गफ़लत मे और
ज़द मे तूफ़ा को सफ़ीने आ गए।

मैं भावुक हो आया था। फिर मैंने महसूस किया कि शोर बढ गया है। माहौल का जायज़ा लेने पर पता चला कि वहां पीने वालो की तादाद काफ़ी बढ गई है। मैं इस क़दर खो गया था ?.... ... वाक़ई। मेरी शराब ख़त्म हो गई

थी कैसे। सन्देह से मैंने अपने करीब बैठे खुशपोश की ओर देखा। क्या मेरी शराब इसने भी पी है? वह अचानक उठ गया। उसने दुबले-पतले पीयक्कड का हाथ मजबूती से पकड रखा था जो लडखडाने के बावजूद वहां बैठकर और पीने का इरादा रखता था। लेकिन खुशपोश ने उसे अधिकार जता कर पूरी ताकत से कदरे घसीट ही लिया था।

'खुश रहो .. जियो!' जाते समय खुशपोश ने गवैये की तरफ चवन्नी फैंक कर कहा। वह अपने साथ दुबले-पतले पियक्कड को भी ले गया।

गवैये ने उसे अदब से सलाम मारा था। और मैं तरंग में सोचने लगा था कि इतनी देर तक की गई इसके गले की कसरत की कीमत क्या सिर्फ चवन्नी है? जाने कितनी प्रतिमाएं इसी तरह इस मुल्क में रुल रही होंगी? जोश में आकर मैंने जेब से निकाल कर गवैये को एक रुपया दे दिया। रुपया लेकर गवैये ने मुझे भी उसी तरह सलाम मारा, जैसे उस खुशपोश से चवन्नी पाकर उसने शुक्रिये का सलाम किया था। इसकी निगाह को क्या हो गया है? सोचने का समय नहीं था।

गजल खत्म हो चुकी थी। गवैया अब बीडी सुलगा कर अपनी बची हुई शराब पीने लगा था।

मुझे खुमार पूरी तरह हो चुका था, और मेरी हालत नशे से एकदम पहले की थी।

'दारू लाख बुरी सही, लेकिन हम जैसे लोगों के लिए इसका एक बहुत बड़ा फायदा है।' टेबल पर जमे हुए एक व्यक्ति ने अपने साथियों से कहा। संख्या में वे कुल चार थे। हुलिये से वे सब मजदूर पेशा लग रहे थे। उनके बीच 'हरी' की एक पूरी बोतल रखी थी, जिसमें वे बारी-बारी मुंह लगाकर दारू के घूंट भर रहे थे। उन चारों के बीच टेबल पर पापड और दाल-सेव व बीड़ियों के बंडल पड़े थे। उनकी बातों में गाली-गलौज की अधिकता थी।

'क्या?' चुटकी भर सिवइयाँ मुंह में रख कर एक ने पूछा।

'भई, दिनभर हाड तोड मेहनत करने के बाद यह दारू हमारे जोड-जोड को आराम पहुँचाती है!'

'जरूर।''' और वक्त से पहले ऊपर पहुँचाने में भी मदद करती है।' उँगली से ऊपर की ओर इशारा करता हुआ उनमें से एक अन्य बोल पड़ा। बाकी लोग हँसने लगे थे। मैं मुस्कराया।

'यह 'गुलाब' नही, मेरे बच्चों का लहू है, जिसे मै पी रहा हूँ।' मरियल मे फटेहाल एक पीने वाले ने लाल शराब का गिलास उठाकर गुलूगीर आवाज़ में कहा तो वहां हर कोई उसे देखने लगा।

'ज्यादा पी गया है।' चार की टोली में से एक बोल पड़ा।

'बहुत थोडी पी है, भई।' उसने सुन लिया था। सारी शराब एक ही घूट में गुटकने के बाद वह बोला– 'आज फिर खामखाह चालान ठुक गया ··· घोड़ा मर जाए तो पिंड छूटे !'

'बाहर कोई सवारी पुकार लगा रही है !' एक अन्य ने मजा लेते हुए कहा।

'लगाने दो ··· हम तो पिएगे ही। ··· बीडी आगे पैसे मे दो आती थी, अब दो पैसे मे एक होने वाली है।' मैं तय नहीं कर पा रहा था कि वह हँस रहा था अथवा उसकी आँखे नम थी।

'इतना मत सोचो, अल्लाह का नाम लेकर पी डालो।···गुनाह नही होगा !'

'छोडो भी यार ! क्यो मजा किरकिरा कर रहे हो ?' उसके एक साथी ने उसे टोका।

गवैये को मैंने एक नजर देखा। उसे संभवतः सुरूर आ चला था। बीडी के घुट खींचता हुआ वह राजस्थानी लोकगीत की एक धुन होठों-होठों में गुनगुना रहा था।

मैं उठकर काऊंटर से दारु लेने लगा। दो रुपये की 'गुलाब' लेकर लौटा। इतने मे गवैये ने राजस्थानी का प्रसिद्ध लोकगीत'कुरजां' अलापना शुरू कर दिया था। पीने वाले बातें कर रहे थे। बीच-बीच मे वे उसे दाद भी देते जा रहे थे।

चार की टोली वाले मजदूरों की ओर मेरे समेत वहाँ लगभग सब का ध्यान चला गया। किसी बात को लेकर गरम हो उठे थे। गवैया गा रहा था, लेकिन अब उसका स्वर धीमा हो गया था।

'मेरा कोई बाप लगता है जो मैं कम पैसे ठहराता ?' एक ने सफाई दी।

'एक मुक्के में बत्तीसी बाहर हो जाएगी। स्साला !' उसके ऐन

सामने बैठे एक बलिष्ठ-से दिखाई देने वाले ने कहा, 'हम तेरे पर शक कर रहे हैं क्या ?... .. पैसे तो रखवा लेता उस ठेकेदार की औलाद से।'

'अरे अड जाते तो आज ही देने पडते उसे।..... लेकिन एक दिन का काम तो है नही। ....'

'ठीक है .... ठीक है।'

'हां, दादा भाई ! ठीक है। छोडो। पीने के बाद तैश में आना ओछी बात है। और पीने वाले तो बहुत दिलदार होते हैं .... एक बोतल और चलेगी।' कह कर वह अपनी दिलदारी का सबूत देने के लिए शराब लेने की गरज से काऊंटर पर चला गया। उन चारो ने अब तक पूरी बोतल खाली कर दी थी।

'ठेकेदारनी बैसे लजीज है !' पापड का एक टुकडा मुंह में रखते हुए एक बोला। वह जैसे ठेकेदारनी ही को चख रहा था।

'तूने चखी है ?' उसके एक साथी ने पूछा।

'घर की जोरू की गुलामी मे तो फुर्सत नही और ठेकेदारनी पर पिल पडने की बात करता है।' एक अन्य ने कहा।

'मैं सच्ची कहता हूं, भई !'

'एक बाल तक नही दिखाने वाली है वह।'

'अरे यह दारू बोल रही है।'

उनका साथी नयी बोतल लाकर उनके बीच जम गया था। वे सब पुनः सहज से हो गये थे।

लम्बे बालो वाला गवैया अब पूरी मस्ती में 'कुरजां' गा रहा था। मैं धीरे-धीरे अपनी 'गुलाब' खत्म कर रहा था। मुझे अब नशा होने लगा था।

'छोकरे !' कर्कश स्वर मे एक बीमार-से अधेड़ ने पापड़ वाले को पुकारा। वह जाने कब से कोने मे दुबका हुआ पी रहा था।

दरवाजे के पास टोकरी लिये हुए पापड़ वाले ने अधेड़ की पुकार की तरफ तवज्जो नहीं दी। अधेड़ ने कुछ पल बाद उसे फिर पुकारा। मैंने उसकी ओर देखा। वह मेरी निगाह में तैरने लगा था। यह नशे का असर था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि वह अधेड़ की पुकार की अवहेलना क्यो कर रहा है ? मेरे कानो मे 'कुरजां' की स्वरलहरियां गूंज रही थी। लोग ठहाको और बातो के बीच पी रहे थे।

'रामूड़ा ! सुनता नही है रे ?' अधेड़ ने फिर पुकार लगाई। इस बार उसकी आवाज ज़रा बुलन्द थी। लड़के ने उसकी तरफ़ तवज्जो दी। लेकिन वह अपने स्थान से नहीं हिला।

'क्या ?' उसने वही से कहा।

'पापड़ तो दे दे ?' अधेड़ ने अपने बेतरतीब खिचड़ी बालो में हाथ फेरते हुए कहा। उसके आगे ख़ाली गिलास रखा था। वह बीड़ी पी रहा था।

लड़का अनमने मन से अधेड़ के नज़दीक गया। टोकरी से निकाल कर उसने एक पापड़ उस के आगे किया तो मैंने अपनी रान पर एक चिकोटी काटी। खुद को मैं होश में लाने की कोशिश करने लगा। लेकिन नही, मैं होश में ही था। मैंने सही देखा—अधेड़ पापड़ वाले का कान उमेठने लगा था और लड़का दर्द से कराह उठा था। उसका फीका चेहरा सुर्ख हो चला था। यह क्या वहशीपन है ? अन्य पीने वाले क्यो इस जुर्म की तरफ़ तवज्जो नही दे रहे हैं ?

'कब से बुला रहा हू ? सुनता ही नही लाट साहब।........' कान छोड़ने के बाद उसने पापड़ लेते हुए कहा।

मैंने साफ़-साफ देखा, लड़के की आंखों में आंसू थे, लेकिन वह रो नह रहा था। मैं उस अधेड़ के प्रति गुस्से से भर गया। लड़का मुड़ने को हुआ तो उसे रोक लिया।

'कितने पैसे हैं तेरी जेब में ?' अधेड़ ने लड़के से पूछा तो उसने दूसरा खाली हाथ दिल पर बनी जेब पर रख लिया, जिसमे निश्चय ही कुछ छोटे सिक्के थे। वह सहम गया था। उस मरियल दारूड़िये की यह मजाल ? दादागिरी कर रहा है कमसिन पर ? मैंने खुद से कहा। लड़के को मैं उसके चगुल से मुक्त कराने की ग़रज़ से उठने का विचार करने लगा था।

'नही है !' डरे हुए रामूड़े ने कहा।

'झूठ बोलता है !' वह घुड़का।

'ओय खूसट !' मजदूरो की टोली के पास बैठे पी रहे एक तगड़े-से युवक ने अधेड़ को टोका। 'यह क्या बकवास है ?'

'मुंह सम्भाल कर बोलना, बाबू !' अधेड़ ने उसकी ओर सुर्ख आखो से देखते हुए कहा।

'मैं अभी तेरी गरदन सम्भाल लूंगा !.... क्यों इसे तग कर रहा है ?'

मैं खुश हुआ कि चलो कोई तो माई का लाल सामने आया। रामूड़े को अब निज़ात मिल जाएगी, मैंने सोचा। अन्य पीने वालो ने इस ओर विशेष ध्यान नही दिया। गवैया 'कुरजा' समाप्त कर फिर पीने लगा था। मैंने भी अपनी दारू की सुध ली।

'तेरी मा ने कितना दूध पिलाया है तेरे को ?...., टेंटुआ दबा दूंगा। समझा ?' फटे बास-सी लेकिन बुलन्द आवाज में वह अधेड अजीब तरह से हाथ लहरा कर बोला। उसका ध्यान इस वक़्त तक रामूड़े की तरफ़ से हट चुका था।

जवाब मे वह तगडा-सा व्यक्ति बिजली की फुर्ती से उठ कर अधेड़ के सामने चला गया। अब सब पीने वाले उधर ही देखने लगे थे।

'बाबू लोगो! झगड़ा मत करो।.... पुलिस आ- जाएगी अभी।' काऊँटर से आवाज आयी। दारू बेचने वाले ने आगाह किया।

'क्या कहता है ? . बोल!'अधेड की नाक के आगे तगडे से व्यक्ति ने घूसा तानते हुए कहा।

लड़का वहा खडा काँपने लगा था।

अधेड ने भी जवाब मे उसका गिरहबान पकड लेना चाहा। मगर उस मे यह नही हो सका। उसने अपने दोनो हाथ इधर उधर चलाने शुरू कर दिये थे। वह अपना सतुलन बनाये न रख सका। बेबसी में वह गिरहबान पकडने वाले को फोहश गालिया बकने लगा था। इस पर उसने अधेड की खसखसी दाढी वाले गालो पर कस कर तीन-चार चाटे जमा दिये। गिरहबान पर उस की गिरफ्त पहले से मजबूत हो गयी थी।

'मत मारो, मत मारो!' लडके ने कहा। उसने टोकरी एक ओर रख दी थी, जिसमे अब एक ही पापड शेष रह गया था।

मार खाया हुआ अधेड तेजी से गालियां बकने लगा था। उसके मुँह से झाग निकलने लगा था। उसका चेहरा विद्रूप हो उठा था।.. ... इतने में तगडे से व्यक्ति ने पेंट की पिछली जेब से 'एक बडा सा चाकू निकाल कर एक झटके से खोल लिया। चाकू का चमकता हुआ फल अपनी नगी आँखो के सामने देख अधेड़ क्षण भर के लिए हतप्रभ हो कर चुप हो गया। मैंने अपने जिस्म मे झुरझुरी महसूस की। अन्य लोगो की कैफ़ियत का जायजा लेने की स्थिति में मैं नही रह गया था।

मैंने देखा रामूड़ा तगड़े-से व्यक्ति के चाकू वाले हाथ को अपने हाथों से पकड़ कर झूल-सा गया है।

चाकू का फल रोक कर उस युवक ने क्षण भर प्रश्नवाचक दृष्टि से लड़के की तरफ देखा। लड़का बेहद घबरा गया था। अधेड़ उसी तरह नशे मे झूमता हुआ गालियां बके जा रहा था।

'हां इन्हें छोड़ दो।........ यह हमारे बाबा हैं!' उसने स्पष्ट किया, 'बाप! मैं आपके पैर छूता हूँ, आप मुझे मार डालिये, लेकिन इन्हें छोड़ दीजिये!' कहता हुआ वह उसके कहता मे झुक गया था।

मुझे एक जोरदार धक्का लगा। युवक का चेहरा अजीब-सा हो आया। अधेड़ के गिरहबान पर उस की गिरफ्त ढीली पड़ गयी। बाद में उसने गिरहबान छोड़ दिया। अधेड़ हालाकि अभी भी अनाप-शनाप बक रहा था, लेकिन युवक चाकू बन्द कर जेब में रख चुका था। फिर वह तेज-तेज कदमों से वहां से चला गया। आधा भरा हुआ शराब का उसका गिलास उसी तरह मेज पर पड़ा था, जिसे वह अधेड़ गटक गया।

मेरा नशा टूटने लगा था। मेरे आगे खाली गिलास थे, जिन्हें मैं बरदाश्त नहीं कर पा रहा था।..... और शराबघर से चलते समय मैंने कुछ छोटे सिक्कों की खनखनाहट सुनी, जिन्हें पापड़ वाला रामूड़ा जेब से निकाल कर अधेड़ को दे रहा था। □ □

सख्त चेहरे वाला आदमी

□

ईश्वरचन्दर

सख्त चेहरे वाला आदमी

पहले तो एक क्षण को वह डर गया था।

थका-माँदा, पसीने में तर, बरामदे में सायकिल रखकर, जैसे ही वह अन्दर घुसा, तो देखा, सफेद दाढ़ी वाला एक बूढ़ा सा आदमी, उसके कमरे में, आँखें मूँदे ईजी चेयर पर पड़े-पड़े बीड़ी पी रहा था।

वह डर गया, कि यह कौन आदमी है, जो उसके घर में ऐसी लापरवाही के साथ आकर बैठ गया है, और पड़ा-पड़ा मज़े से बीड़ी फूक रहा है।

हाथ वाले एक-दो थैले उसने मूढ़े पर रख दिये। उसके कमरे में घुसने, और थैलों को मूढ़े पर रखने से जो थोड़ी बहुत आहट हुई थी, उससे भी सफ़ेद दाढ़ी वाले उस बूढ़े की आँखें न खुली। लेकिन उसके दो उँगलियों के बीच पकड़ी हुई बीड़ी बराबर धुआँ फेंक रही थी।

तब वह आगे बढ़ गया, और बड़े गौर से उसने बूढ़े के चेहरे की तरफ़ देखा। अब वह उसे पहचान गया। . अरे, यह तो उसका बाप था। दाढ़ी बढ़ा ली थी, या बूढ़ा हो गया था, तो क्या हुआ! अपने ही बाप को पहचानने में क्या देर लगती है?

बूढ़ा जब अब भी आँखें मूँदे पड़ा रहा, तो उसने पूछ ही लिया—
'क्यों आए हो?'

बड़े आराम से धीरे-धीरे बाप ने पलकें उठाईं। बीड़ी का एक लम्बा कश लिया। और फिर बहुत ही संयम भरी धीमी आवाज में बोला—
'तुमने कुछ पूछा?'

बेटे को गुस्सा भी आया, और साथ के साथ वह हैरान भी रह गया, कि उसका बाप कितने आराम से आकर उसके घर में बैठ गया है, और फिल्मों में जैसे खलनायक पूछा करते हैं, वैसे पूछ रहा है— तुमने कुछ पूछा?

'हाँ ! पूछ रहा हूँ, क्यों आए हो ?'— बेटे ने फिर कहा।

वैसी ही धीमी आवाज़ में बाप फिर बोला— 'तुम शायद ग़लत सवाल कर बैठे हो ! पूछना शायद तुम्हें यह है कि कब आए हो ?'

'नही !.. मैं यही पूछ रहा हू कि क्यों आए हो ?'

'क्यो ?.... इस घर में ऐसा कोई भी नही रहता, जिसे मैं अपना कह सकू ?'

'नही ! ऐसा कोई नहीं है।' बेटे ने तल्ख़ी से कहा।

बेटे के मुह से ऐसी बात सुनते ही, कोई भी बाप चौंक सकता है। लेकिन सफ़ेद दाढ़ी वाला वह बूढ़ा नही चौंका। न उसके चेहरे में कोई परिवर्तन आया। उसने तो बस, बीड़ी का एक कश लिया, और एक-एक शब्द पर ज़ोर देता हुआ फिर बोला— 'थोड़ा बैठो !.... तुम पसीने में तर हो रहे हो। पसीना सूखते ही तुम ठीक से बात करने लायक हो जाओगे।'

बेटे को तब लगा, जैसे बाप की ऐसी बात से, उसके शरीर से और पसीना बह निकला था। लेकिन फिर भी वह बोला ही— 'नहीं, नहीं ! इस पसीने-वसीने को बीच में न लाओ। बात करने लायक तो मैं अब भी हूं।''' बोलो !'

बाप वैसे ही ईज़ी चेयर पर अधलेटा-सा पड़ा रहा। बोला, 'चलो, यही सही ! तो फिर ऐसा करो ! .. ये तुम्हारे थैले, जो तुमने मूढ़े पर लाकर रख दिये हैं, चौके में रख आओ। और बहू से भी मिल आओ। तब तक तुम्हारा पसीना भी सूख जाएगा, और हम बात भी कर लेंगे।'

एक बार बेटे की इच्छा तो हुई, कि वह यहां भी बूढ़े की बात को काटे। लेकिन फिर जैसे यंत्र-चलित सा वह उठा। मूढ़े पर से उसने थैले उठाए, और चौके की तरफ़ चला गया।

चौके में आकर उसने बीवी से पूछा, कि बूढ़ा कब आया है, और उसने उसे क्यों घर में बैठने दिया ?

बीवी बोली कि वह उसे मना कैसे कर सकती थी ! ससुर के सामने उसने आज तक कभी एक बार भी मुंह नहीं खोला था, सो अब कैसे खोलती !

बीवी आगे बोली कि इतना अवश्य हुआ था कि दाढ़ी वाले किसी अजनबी को अपने दरवाजे पर खड़ा पाकर, पहले तो वह चौंक गई थी। चौंक भी गई थी, और साथ के साथ पहचान भी नहीं पाई थी, कि वह कौन है! तभी बूढ़े ने आगे होकर उसे अपना परिचय दिया। परिचय पर भी वह विश्वास न करती। लेकिन पहले तो उसने ससुर की आवाज पहचान ली, और फिर बूढ़े की दाढ़ी में छिपे चेहरे की धुंधली आकृति से उसे स्पष्ट लगा, कि उस अजनबी को पहचानने मे वह गलती नहीं कर रही है। वह तो उसका ससुर ही है।

उसने फिर बीवी से पूछा कि बूढ़े ने कुछ बताया होगा कि इतने वर्षों वह कहाँ रहा और अब ही क्यों आया है, जब कि हम लोगों ने तो जैसे उसे मरा हुआ ही मान लिया है।

बीवी बोली, कि न तो उसके बाद उसने ससुर से कोई बात ही की है, और न उसने खुद ने ही, ऐसी कोई कोशिश की, कि घर वालों के हाल चाल ही पूछ लेता। वह तो बस, दरवाजा खुलने के बाद, अन्दर आराम-कुर्सी पर आ कर बैठ गया है। तब से लगातार बीड़ी का धुआँ कमरे से उठ रहा है या रह रह कर उसे जोर की खाँसी उठती है। लेकिन पिछले दो तीन घंटों के दौरान न तो उसने कुछ मांगा है और न झाँककर ही देखा है कि घर मे और कौन-कौन लोग हैं। उल्टे वह खुद ही एक दो बार चुपके से उस कमरे में झांकने गई थी कि देख आए कि वहाँ बैठा-बैठा बूढ़ा क्या कर रहा है। तो उसने देखा कि बूढ़ा बीड़ी तो पी ही रहा था और साथ मे उसने अलमारी में से कोई एक किताब उठा ली थी जिसे वह बड़े ध्यान से काफ़ी देर तक पढ़ता रहा था। वैसे जाने को बच्चे भी एक दो बार कमरे में झाँकने गये थे। लेकिन बूढ़े की घनी सफ़ेद दाढ़ी को देखकर शायद वे डर गये थे और उनकी उस कमरे मे जाने की फिर हिम्मत ही नहीं हुई थी।

बेटे को तब लगा, कि उसकी बीवी ने सच में ही अपने ससुर से कोई बात नहीं की है, और ना ही बच्चे बात करने की हिम्मत कर पाए हैं।

० ० ० वह नहाने चला गया। रोज ही वह ऐसा करता है। आफ़िस से थका मांदा-सा, पसीने मे तर, घर लौटता है। पांच-सात मिनिट तक पंखे के नीचे बैठता है, डाक देखता है—और फिर नहाने चला जाता है।

नहा लेने के बाद, वह वापिस कमरे में आया। बूढ़ा अब भी पहले की

तरह आँखें बन्द किये ईजी चेयर पर पड़ा रहा। बीड़ी अब भी पहले ही की तरह उसकी दो उंगलियों के बीच धुआं उगल रही थी।

बेटे ने बड़ी लापरवाही से एक बार बूढ़े की तरफ़ देखा। फिर उसने पास पड़े टेबुल पर नजर घुमाई, जहां एक धार्मिक पुस्तक पड़ी हुई थी। उसे इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं लगा। बीवी ने उसे अभी बता ही दिया था, कि बूढ़ा अलमारी में से एक किताब उठाकर काफ़ी देर तक पढ़ता रहा था। किताब उसने एक जगह से उठाकर, दूसरी जगह पर रख दी। आहट तो हुई थी। लेकिन बूढ़ा अब भी पहले की तरह आँखें बन्द किये हुए पड़ा था।

बेटे को बड़ा गुस्सा आया, कि देखो, उसने जानबूझ कर कुछ आहट पैदा करने के लिये, किताब एक जगह से उठाकर दूसरी जगह रख ली थी। लेकिन बूढ़े पर उसका जैसे कोई असर ही नहीं हुआ था। तभी उसने पूछ ही लिया—'कहां थे आप इतने साल ?'

बूढ़ा बिल्कुल नहीं चौंका। जैसे उसने पहले ही जान लिया था, कि कोई उस कमरे में आया है। धीमे से उसने पलकें उठाईं— 'आसाम में था।'

तब बेटे को यह बात कहते हुए थोड़ी भी झिझक नहीं हुई, कि उन लोगों ने तो उसे मरा हुआ ही मान लिया था। भला जिस बाप ने इतने वर्षों तक अपने घर की खबर न ली हो, उसके लिये और सोच भी क्या सकता था! इसलिये उन्होंने बूढ़े को मरा हुआ ही मान लिया था।

इस बात पर भी बूढ़ा नहीं चौंका। बोला – 'हां! सही है। तुम लोगों ने जो मुझे मरा हुआ मान लिया, अच्छा ही किया। वरना मेरे आने की प्रतीक्षा में तुम लोग कुछ कर नहीं पाते।'

बेटा बोला – 'करने को तो अब भी क्या कर पाए हैं! जिस घर में कमाने वाला बाप हो वहां बच्चों का अपना कोई भविष्य भी होता है .. कोई सपने होते हैं। लेकिन हम लोगों ने तो अपना भविष्य और अपने सपने, यह सोचकर न्यौछावर कर दिये, या समझ लो त्याग दिये, कि बेबाप की औलाद का तो ऐसा ही भविष्य होता है।'

बाप बोला– 'मैं सब समझता हूं, कि तुम क्या कहना चाहते हो। लेकिन अब न तो मेरे बीते दिन वापस आ सकते हैं और न ही तुम्हारा कोई भविष्य रह गया है।' एक दो क्षण को चुप रह कर बूढ़ा फिर बोला – 'मालती भी मर गई होगी ?'

बेटा बोला– 'हाँ माँ तो आपके चले जाने के दो-तीन वर्ष बाद ही चल बसी। वैसे, मर तो वह उसी दिन ही गई थी जिस दिन काफ़ी कोशिशों के बावजूद हम आपका पता नहीं लगा पाए थे। लेकिन उसके बाद भी दो तीन साल उसने यों ही खो कर निकाल लिये। आप के चले जाने से, माँ के मरने तक, हम लोग माँ की मुस्कान देखने को तरसते रहे। लेकिन एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद, हम माँ की मुस्कान केवल तब ही देख पाए, जब वह मर रही थी, और हम उसके पास बैठे रो रहे थे। केवल तब ही मुस्कराकर उसने हम लोगों को ढाढस दिया था, कि क्यों रो रहे हो, मैं कोई मर थोड़े ही रही हूं। बस, उसके तुरन्त बाद माँ हमें छोड़ गई।'

यह कहते-कहते बेटे की आँखें भर आईं। लेकिन उसने देखा, कि बाप के चेहरे पर इस बात का थोड़ा भी दुख उभर कर नहीं आया, कि अब उसकी बीवी मर गई है, या वह नहीं रही।

बूढ़ा केवल इतना बोला–'हाँ, मैंने भी यही अनुमान लगाया कि, मालती शायद नहीं रही' वरना मुझे आए हुए दो-तीन घंटे हुए हैं। वह अगर जिंदा होती तो जरूर भागी-भागी मुझसे मिलने आती। चलो अब मर गई, तो ठीक है। अब क्या हो सकता है। और वैसे मौत है भी क्या, जीवन प्रक्रिया का अंत है, सो मालती का हो गया तो मेरा भी हो जाएगा।'

बेटे को बड़ा अजीब सा लगा, कि देखो कैसी होती है यह बुढ़ापे की उम्र, कि बीवी की मौत को कितनी आसानी से, बूढ़े ने स्वीकार कर लिया, और कैसे बूढ़े को खुद को भी, इस बात का अब डर नहीं रहा, कि मौत एक भयानक चीज होती है, जिसे हर कोई इतनी आसानी से स्वीकार नहीं कर पाता, जिस आसानी से उसका बूढ़ा बाप उसे स्वीकार कर रहा है।

बाप को तब अपनी लड़की की याद आई—'वसुधा नहीं है ?'

'मां की मृत्यु के दो-एक साल बाद उसकी मैंने शादी करवा दी।' बेटे ने कहा।

बाप ने केवल गर्दन हिलाई, कि जैसे सतुष्ट था, कि चलो अच्छा किया। वैसे, बेटे ने, उसी क्षण मन ही मन यह सोच लिया था, कि बाप ने अगर वसुधा के प्रति और कुछ पूछ लिया, तो वह बूढ़े को एक दो और भली बुरी बातें सुना देगा, कि वसुधा की शादी की जिम्मेदारी तो आपकी ही थी। व्यर्थ ही यह सब मुझे करना पड़ गया था, 'जो कि आपको करना था—और वसुधा की शादी के लिये, तभी के लिये हुए कर्ज मैं आज तक ठीक से नहीं चुका पाया हूँ।

लेकिन बाप ने उस सम्बन्ध में आगे कोई बात नही की।

तब फिर बेटे को लगा, कि जैसे अपने पहले वाले परिवेश से हट कर वह बातो के या भावुकता के बहाव मे बह गया था। उसे बाप से जो कुछ विशेष पूछना था, वह पूछ ही नही पाया है इसलिये बेटे ने फिर बूढ़े से पूछा — 'क्या करते रहे आप आसाम मे ?... और वह भी इतने वर्षों तक ?'

'कुछ नही ! वहां एक औरत के चक्कर में फंस गया था। कुछ मैं फंस गया था, कुछ वह फंस गई थी। और फिर मैं उसके जाल में ऐसा उलझ गया था, कि पहले का सब कुछ भूल-भाल सा गया। मालती को भी, तुम लोगो को भी।'

बेटे को इस बात पर बहुत गुस्सा आया, कि बूढ़ा कितनी लापरवाही और बेशर्मी से वह सब बता गया, जो एक बाप को अपने बेटे को नहीं बताना चाहिये।

तभी फिर बेटे को अपने माँ के सोचने पर दया सी आने लगी, कि कैसे उसे खराब खराब से विचार आते रहे, कि पता नही कोई दुर्घटना हो गई, या किसी ने, दुश्मनी से, उसे कही कुछ ऐसा वैसा कर दिया। और उधर बाप था, जो घर पर तो कह गया था, कि दिल्ली जा रहा है। और न जाने कैसे-कैसे या कहा-कहा से भटकता हुआ, वह आसाम निकल गया था। और वहां एय्याशी में जवानी गुजार दी।

०० वैसे पिता को ढूंढने की कोशिश तो उन लोगो ने बहुत की थी, लेकिन कही पता नही चला। तब एक हल्का सा संदेह उठा था सबों के मन में, कि शायद आर्थिक संकट के कारण पैदा हुई परिस्थितियों के दायित्व से मुंह मोड़ कर पिता कही भाग गया है। और इधर माँ थी, कि उसके मन में अपने पति के प्रति, बड़े अजीब से संदेह उठ रहे थे, कि कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो, या किसी दुश्मन ने उनके साथ कुछ ऐसा वैसा न कर दिया हो।

तब फिर बेटे को याद आया कि उनकी माँ की मृत्यु के बाद एक दिन, उनका एक पड़ोसी आसाम गया था, और उसी ने ही आकर इन लोगो को बताया था कि उनके बाप जैसा एक आदमी उसे एक शहर में मिला था। उसने उससे बात करने की कोशिश भी की थी, लेकिन उनके बाप जैसा वह आदमी नकार गया था कि उसने गलत आदमी से बात कर ली है।

तभी से बेटे को भी एक हलका सा विश्वास हो गया था कि हाँ, बाप जिंदा है और शायद अपनी ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़कर दिल्ली जाने के बहाने, घर छोड़कर कहीं चला गया है।

अब जब बाप सामने था तो बेटे ने पूछ ही लिया— 'अपने एक पड़ोसी एक बार आपको आसाम में मिले थे !'

उसकी बात को बीच ही में काटकर बूढ़ा बोला— 'हाँ, मिला था। लेकिन मैंने ही उसे कह दिया कि तुम गलत आदमी से बात कर बैठे हो !'

एक क्षण को बेटे को यह अच्छा लगा कि चलो जवानी में बोले हुए किसी झूठ के प्रति बाप अब सच बोल रहा है।

तब बेटा फिर बोला— 'फिर अचानक ही आज कैसे हम लोगों की याद आ गई ?'

बाप बोला— 'हां ! अचानक ही समझ लो ! अचानक ही याद आ गई। हुआ ऐसा था कि वहां आसाम में उस औरत से मैंने शादी कर ली थी। बहुत खूबसूरत औरत थी।'— यहाँ बाप ने देखा कि बेटे के चेहरे पर शिकन आ गई थी। शायद इसलिये कि उसकी माँ से बढ़कर बूढ़ा किसी अन्य औरत की खूबसूरती की बात कह रहा था। इसका मतलब कि यहाँ वह खुद ही अपनी मालती के प्रति एक हीन सी राय बना रहा था। लेकिन बूढ़ा बेटे के चेहरे में आए परिवर्तन या उसकी भावनाओं की तनिक भी परवाह किये बग़ैर आगे बोलता रहा— 'फिर हम दोनों बरसों साथ रहे। उस औरत के पास बहुत पैसा था। वह मेरे पीछे जैसे पागल ही गई थी। उसने मुझे ढेरम्मा पैसा दिया कि वहीं आसाम में ही कोई धंधा पानी कर लूं। लेकिन वापस अपनों के पास न जाऊं। मकान-वकान सब उसने मेरे नाम कर दिये थे। और मैं भी लालच में...!'

तभी बाप की बात को बीच ही में काट कर बेटा बोला— 'अपनों से बढ़ कर आपको वे मकान-वकान और वह खूबसूरत औरत अच्छी लगी ?'— बाप को लगा कि बेटे ने व्यंग से वहाँ 'खूबसूरत' शब्द पर अधिक जोर दिया।

वह बोला— 'हाँ, ऐसा ही कुछ हो गया। मैंने कहा ना कि मैं जैसे उसके चक्कर में फस गया था.... उसके जाल में उलझ गया था।'

बेटे को भी लगा— कि हाँ सच होगा। उसका बाप किसी के चक्कर में फस गया होगा। वैसे भी . जवानी में उसका बाप काफी खूबसूरत लगता था।

तभी बेटा फिर बोला— 'चलो छोड़ो ! जो हुआ, सो हुआ !.... अब आप हमसे क्या लेने आये है ?'

उसी ही शून्य भाव से बूढ़ा बोला— 'लेने नही, देने आया हूं। मैं अपनी पूरी जायदाद तुम्हारे या तुम्हारे बच्चों के नाम कर देना चाहता हूँ। मेरी आसाम वाली बीवी से अगर कोई बच्चा हुआ होता— तो शायद उस जायदाद पर, तुम्हारा या तुम्हारे बच्चो का अधिकार न रहा होता। और न मैं तुम्हें कहता ही। क्योंकि वह सभी कुछ मेरी उस बीवी का ही दिया हुआ है। लेकिन अब तो वह खुद भी मर गई। और हम दोनो के कोई बच्चा हुआ ही नही। बच्चा होता भी कैसे ! तब भी हम दोनों कोई बहुत जवान तो थे नही। यों ही बस थोड़ा एक दूसरे के चक्कर में आ गये थे'। इतना कह कर बाप ने एक बार दिल पर हाथ रख दिया। कुछ क्षणो की चुप्पी के बाद बाप फिर बोला— 'और फिर जब वहां कोई बच्चा नही था तो मुझे याद आया कि तुम लोग तो अभी हो। ... वैसे मैंने सोचा यह भी था कि मालती अभी जिंदा होगी। वह नही रही। चलो छोड़ो तुम हो, तुम भी तो उसकी निशानी हो !'

बेटा बोला— 'नही ! हमें आपकी जायदाद-वायदाद से कोई मोह-वोह नहीं है। आपके मन मे आए जिसे दे दो !'

इतना कहते हुए बेटे को लगा कि देखो बाप कितना निर्मोही या कठोर हो गया है कि उसने इतना तक भी नहीं पूछा है कि अब मेरे कितने बच्चे हैं ? — या बच्चे कहां हैं ... एक नजर मैं उन्हें देख तो लू। बाकी कहने को वह कितनी आसानी से कह गया कि जायदाद वह उसके या उसके बच्चों के नाम कर देना चाहता है।

बेटे को याद आया कि जब पिताजी घर छोड कर चले गये थे तब उसके एक भी बच्चा नही था। बस उसकी शादी हुई ही थी कि कुछ महीनों बाद, उसका बाप फरार हो गया था। तब के बाद अब आकर उसे अपने घर वालों की याद आई है।

तभी फिर गुस्से ही गुस्से में बेटे ने बाप को अच्छा बुरा सब कह डाला कि जब उनका अपने घर वालों के प्रति कोई कर्तव्य था तब तो वे इश्क-विश्क के चक्कर मे फसे रहे। और अब जब कि वे जैसे-तैसे दाल रोटी कमाने या अपने पैरो पर खड़े होने लायक हुए हैं तो उन्हें अब याद आई है कि हम लोग जैसे अभी तक इनके सहारे बैठे हैं। या जैसे हम बाट जोह रहे थे कि कब पिताजी ढेर सारा धन कमाकर हमारे लिये ले आते हैं।

बूढ़ा सब सुनता रहा। उसने देखा उसकी बीड़ी बुझ गई थी। एक बार पुन बीड़ी सुलगाकर बाप बोला— 'जब तुम इतना कुछ कह गये हो तो एक बात तुम्हें बता देता हूं। अपनी जायदाद वग़ैरह वैसे मैं शायद तुम लोगों को नहीं भी देता। वे सब चीज़ें मेरे बुढ़ापे का सहारा थीं। और फिर यह भी बता दूं, कि आज के आदमी को जितना स्वार्थी होना चाहिये, उतना मैं भी हूं। ..... लेकिन सच तो यह है, कि मुझे एक साथ दो-दो बीमारियां लग गई हैं। एक तो कैंसर है। दूसरे, रह रह कर मुझे दिल का दौरा पड़ता है। कई बार ऐसा हुआ है कि जैसे अब गया तब गया। लेकिन फिर न जाने क्या बात है कि मैं मर नहीं पाता। अब तो ख़ैर डाक्टरों की बातों से भी मुझे लग गया है, कि मैं कुछ ही दिनों का मेहमान और हूं। मैं नहीं जानता कि मेरी मौत कैंसर से होगी या दिल के टूटने से। लेकिन होगी जल्दी ... यह तो करीब-करीब निश्चित सा है।'

बेटे को लगा, कि बूढ़ा बहुत साफ़ या सपाट ढंग से अपनी बात कह रहा था। उसके चेहरे पर ऐसी कोई रेखाएं नहीं थी, जो कि एक साधारण आदमी के चेहरे पर हो, जिसे यह पता चल गया हो, कि वह अब कुछ ही दिनों का मेहमान और है।

तभी बेटे ने बड़े ध्यान से, बाप के चेहरे और शरीर को बारीकी से देखा। हालांकि बाप पहले दाढ़ी नहीं रखता था। लेकिन फिर भी बाप की दाढ़ी में ढका, बाप का चेहरा उसे बहुत कमजोर लगा। बेटे को लगा, कि बाप की बांहों और शरीर में कैसी सलवटें पड़ गई थीं। उनकी पहले वाली खूबसूरती भी न जाने अब कहां उड़ गई थी।

० ० ■ वैसे नफ़रत तो बाप से उसे तभी हो गई थी, जब बाप के चले जाने के कुछ वर्षों बाद, उनके पड़ोस के एक आदमी ने आकर उन लोगों को बताया था, कि आसाम के एक उपनगर में, उसने, उनके बाप जैसे एक आदमी को देखा था। उस आदमी से बात भी करनी चाही थी, लेकिन बूढ़े ने तब उस आदमी को पहचानने से इन्कार कर दिया, कि उसने किसी गलत आदमी से बात करली है।

......सो, नफ़रत तो बाप से वह उसी दिन से ही करता आ रहा है, कि देखो, उसका बाप कैसे अपने ही दायित्व से पलायन कर गया था। लेकिन उसे दया सिर्फ़ इस बात पर आ रही थी, कि बूढ़ा कितनी आशाएं लेकर आया होगा, कि उसकी बीवी उसे वापिस आया देख कितनी गद गद होगी—और कैसे

आ कर उसके गले मिलेगी। या खुद बेटा ही कैसे, पैर छूकर बाप की इज्जत करेगा। लेकिन न तो उस बूढे की मालती जिंदा है, और इधर उसका बेटा, पैर छूना तो दूर, उसकी औपचारिक इज्जत भी नहीं कर पा रहा है।

तब फिर बेटे ने पूछ ही लिया—'कुछ खाया पीया है आपने ?'

'नहीं !' बाप ने एक शब्दीय संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

'खाओगे ?'

'हाँ, खा लूंगा। भूख भी लगी है। पहले सोचा, कि बहू से मांग लेता हूँ। लेकिन फ़िर लगा, कि तुम्हारे आने का भी शायद वक्त हो गया है। साथ बैठ कर खा लेंगे।'

'हूं !' कह कर बेटा चुप हो गया।

०००तब अनायास ही बेटे को लगा, कि न जाने क्यों बाप के प्रति उसके मन मे थोडी नर्मी आती जा रही है।

बेटे को तब कुछ सूझ ही नहीं रहा था, कि बाप के साथ वह और कैसी या क्या-क्या बातें करे। तभी ऐसे ही उसने पूछ लिया—'ये दाढ़ी-वाढ़ी क्यो बढा ली है आपने ?'

पहले जैसी ही गभीर मुद्रा में बूढा बोला— 'अब किस के लिये बनाता ? जवानी में तुम्हारा यह बूढा बाप अच्छा खासा खूबसूरत था। रोज शेव बनाता था... अब तो बस.... !'—वाक्य को अधूरा छोड कर ही बाप चुप हो गया।

बेटे को भी और कुछ बोलने को नहीं सूझा, तो वह उठ कर दूसरे कमरे में चला गया।

तभी तुरन्त ही बाप ने उसे फिर बुला लिया, और बेटे को एक गिलास पानी भर लाने को कहा।

बेटा पानी भर लाया तो बाप फिर बोला— 'मुझे आज फिर दिल की तकलीफ हो रही है। कहीं ऐसा न हो कि मैं यही मर जाऊँ, और जायदाद वगैरह की वसीयत होने से पहले ही सब कुछ चौपट हो जाए।'

बेटा बोला— 'अगर बहुत ज्यादा तकलीफ हो रही हो, तो डाक्टर को बुला लूँ ।'

बेटे को फिर भी लगा, कि यह उसे क्या हो रहा है। पिता के प्रति उसका व्यवहार इतना नरम क्यों होता जा रहा है।

लेकिन बाप बोला— 'नही, नहीं ! मेरी जेब मे गोलियां है। तुम तो गिलास मुझे दो !'

बूढ़े ने अलग-अलग आकार की दो तीन गोलियां पानी के साथ निगल ली। गोलिया निगलते हुए बूढ़े की जब गर्दन उठी, तो उसकी दृष्टि दीवार पर लगी, अपनी मालती की तस्वीर पर उठ गई। वह कुछ देर को एकटक तस्वीर की तरफ देखता ही रहा।

देखा तो यह सब बेटे ने भी, लेकिन वह इसे अनदेखा कर दूसरे कमरे मे चला गया।

इसके बाद चौके में जाकर उसने बीवी को खाना बनाने के लिये कहा। साथ में यह भी कह दिया कि उसके पिताजी के लिये परहेज का खाना बनाए, क्योंकि उसे कैंसर के रोग के साथ-साथ दिल के दौरे भी पड़ते हैं। हालांकि बूढे ने बेटे से ऐसा कुछ भी नहीं कहा था, लेकिन उसने ही बीवी से ऐसा कह दिया कि बूढे के लिये परहेज का खाना बना दे।

और वहीं फिर बेटे ने अपनी बीवी को बता दिया, कि कैसे उसका बाप आसाम की किसी औरत के चक्कर मे फंस गया था। और कैसे उस औरत ने अपने मकान वकान पिता जी के नाम कर दिये थे। अब वह औरत भी मर गई है। और बूढ़े को भी डाक्टरो की बातों से लग रहा है, कि वह अब कुछ ही दिनो का मेहमान और है।

फिर अन्त मे जैसे कोई रहस्य भरी बात सुनाने के अंदाज मे बीवी को उसने बताया, कि कैसे उसका बाप, अब अपनी पूरी जायदाद उसके या उसके बच्चो के नाम कर देना चाहता है।

बीवी सब सुनती रही। लेकिन उसने अपनी तरफ से कोई राय नही सुझाई। केवल हल्की सी मुस्कान उसके होठो पर आई और फिसल गई।

बेटा फिर उस कमरे में चला गया, जहाँ बाप बैठा था। बाप फिर बीड़ी

पी रहा था। बेटे को लगा कि देखो, बाप बीडी का कितना आदी हो गया है, कि एक के बाद एक बीडी पिये ही जा रहा है।

तब उसने बाप से कहा —'कैंसर-वैंमर मे डाक्टर लोग बीड़ी के लिये मना नही करते ? हमने तो सुना है कि तम्बाकू कैंसर के लिये बहुत हानिकारक चीज है। तो, डाक्टर लोग मना तो करते होंगे।'

बाप बोला— 'हाँ, करते है। लेकिन अब क्या है, जब मरना निश्चित ही है, तो मौत दो दिन पहले आए, या दो दिन बाद में—क्या फ़र्क पड़ता है।'

बाप के ऐसे उत्तर पर बेटे को गुस्सा तो आया, लेकिन उसने फिर मन ही मन जैसे कुढते हुए सोचा—मरने दो ! जब कोई खुद ही अपनी जान की फ़िक्र न करे, तो वह हमारा ही सिर दर्द क्यों हो ?—मरने दो !

तभी बेटे को एक अजीब सी बात खटकी, कि पूरी बात-चीत के दौरान बाप के चेहरे पर कभी एक बार भी मुस्कान नही आई थी। केवल वार्तालाप के बीच मे रह रह कर वह खांसा जरूर था। कभी कभी तो लगातार भी।

और वहीं फिर बेटे को मन ही मन यह भी लगा, कि वह बाप से और क्या कहे ! अब उसे लगने लगा, कि जैसे बाप वाली जायदाद आदि की बात की तरफ शायद उसका झुकाव बढता जा रहा है। तभी फिर उसे माँ की याद आई, तो उसे फिर लगा—कि नही। ऐसे बाप से कैसा समझौता, जो उसकी माँ की भावनाओं की फ़िक्र किये बिना ही, घर से मुँह मोड कर कहीं चला गया था। माँ बेचारी मरते दम तक पति के देखने को तरसती रही !

उसने सोचा—नही !

तब बाप की तरफ देख कर थोड़ा कठोर भाव से बेटा फिर बोला— 'देखिये, खाना हम साथ खा लेते है। उसके बाद आप भले ही कहीं भी चले जाएँ हमे आपकी जायदाद-वायदाद से कुछ लेना देना नही है। आपकी इच्छा है, किसी को भी दे दें। वैसे, आपका दिया हुआ यह पुश्तैनी मकान ही हम लोगों के लिये बहुत है।

बूढे के चेहरे मे लगा, कि जैसे बेटे की इस बात से उसके लिये कोई फ़र्क नही पड़ रहा था। वह बोला केवल इतना ही— 'देखो ! सोच लो ! खुद मरे बाद दुनियां मर जाती है। मेरे लिये कुछ फ़र्क नही पड़ेगा। कुछ होगा भी, तो तुम लोगो के लिये। और एक तरह से मेरा थोड़ा कर्ज़ा भी चुक जाएगा, कि जवानी

में जब तुम लोगों के प्रति मैं अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाया था, तो उसकी ऐसे ही कुछ पूर्ति हो जाए। रही मालती की बात। उससे तो मैं......।' आगे बूढ़ा कुछ बोला नहीं। लेकिन उसने अपना वाक्य अधूरा छोड़कर ऊपर आसमान की तरफ़ देखा, जैसे कह रहा हो कि मालती से तो मैं ऊपर ही माफ़ी मांग लूंगा।

इस बीच बेटे को ध्यान आया कि शायद खाना तैयार हो गया होगा। यह पूछने के लिये उठ कर वह फिर चौके की तरफ़ चला गया।

खाना लगभग तैयार हो गया था। बस थोड़ी सी देर थी। बीवी जब तक खाना परसे, तब तक उसने पानी-वानी भर कर बाप के सामने रख दिया।

वह फिर चौके में बीवी के पास जाकर बैठ गया।

खाना परसा जा रहा था कि उसने फिर बीवी को बूढ़े के साथ हुए उसके आगे के वार्त्तालाप का सार बता दिया कि कैसे उसने अपने बाप को कह दिया है कि हमें आपकी जायदाद से कुछ भी लेना-देना नहीं है, कि खाना खा लेने के बाद आप कहीं भी चले जाएँ।

कुछ सोच कर बीवी ने बस इतना ही सुझाया कि बाप की बात को टाल कर वे अच्छा नहीं कर रहे हैं। उन्हें बाप की बात मान लेनी चाहिये।

बीवी आगे बोली— कि उसे अपने पिता के साथ ऐसा रूखा व्यवहार भी नहीं करना चाहिये कि खाना खा लेने के बाद वह कहीं भी चला जाए। आदि-आदि।

एक क्षण को फिर बेटे का मन पसीज गया— तो फिर ले ही लें।

तभी फिर बेटे को लगा कि हाँ, वह शायद कुछ गलत सोच बैठा है। या ग़लत कर बैठा है।

० ० ० खाना-वाना लेकर वह कमरे में गया, तो देखा, बूढ़ा वैसे ही आँखें बंद किये ईज़ी चेयर पर अधलेटा-सा पड़ा हुआ था। वैसे ही जैसे शुरू-शुरू में घर में घुसने से बेटे ने उसे देखा था। बीड़ी उसकी दो उंगलियों के बीच जैसे चिपक सी गई थी। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि अब बूढ़े के होठों पर एक स्थिर मुस्कान थी।

तब बेटे ने देखा कि बाप की दो उंगलियों के बीच चिपकी हुई बीड़ी बुझ गई थी।

जल्दी-जल्दी में खाना टेबुल पर रखकर वह बीवी को चौके से बुला लाया। बूढ़ा अब भी पत्थर के किसी बुत की तरह आँखें मूंदे पड़ा हुआ था।

कुछ देर वे दोनों घूर-घूर कर बूढ़े को देखते रहे, देखते रहे। फिर वे एक दूसरे को ही देखने लगे।

असल में दाढ़ी से ढके बूढ़े के सख्त चेहरे के हाव भाव से, वे लोग यह तय नहीं कर पा रहे थे कि बूढ़ा जिंदा है या मर गया है।

बेटे को तब कुछ देर पहले का संजोया हुआ अपना कोई सपना बिखरता हुआ सा लगा।

उसकी इच्छा हुई कि टेबुल पर पड़े बाप के लाइटर से वह उसके हाथ वाली बीडी सुलगा दे और बाप के कंधों को हिलाकर उसे जगा दे और कहे— कि उठो, मैं खाना ले आया हूँ। बूढ़े के सख्त चेहरे पर अब भी मुस्कान बिखरी हुई थी और बेटे को हिम्मत ही नहीं हो रही थी कि बाप को जगाए या लाइटर से उसकी बीड़ी सुलगा दे।

....और इधर उसकी बीवी ने तो रोना ही शुरू कर दिया था। □ □

सलीब पर टंगे लोग



शचीन्द्र उपाध्याय

सलीब पर टगे लोग

'शेड में झरती हुई दूधिया लाइटों की रोशनी ''' ''' प्लेटफार्म से लग कर बनी लाइनों पर सूं सूं करते इंजन ''' ।

यह शेड नया बना था। देखने पर जलती हुई ट्यूब की पक्ति बड़ी अच्छी लगती। शाम होते ही शेड के नीचे रात काटने के लिए बेघरबार लोग चले आते थे। जब कभी पुलिस आती, अपना अपना सामान उठाकर वे भाग खड़े होते और पुलिस के जाते ही सहमे हुए फिर लौट आते। अपने पुराने स्थान पाने के लिए कभी कभी वे बुरी तरह झगड़ पड़ते। लेकिन शेड के पिछले कोने की ओर कोई नहीं आता था।

वह स्थान झुर्रियों पडी बुढ़िया और उसके अधे बेटे के लिए छोड दिया गया था। आसपास के आवारा कुत्ते, दूध दुहने के बाद निर्दयता पूर्वक भगा दी गई गायें बारिश से बचने के लिए इस कोने में आ खड़ी होतीं।

दो दिन से वर्षा तेज हो रही थी। वे दोनों शेड के नीचे पड़े थे। फटी हुई गुदड़ी, घास काटने का हँसिया, एक लकड़ी और टायरों की टूटी चप्पलें ...। बस, यही उनकी जायदाद थी। लड़का बिल्कुल अन्धा था और अक्सर बीमार रहता था। जब भी वे दोनों बाहर जाते, गुदड़ी वहीं पड़ी रहती और उसमें कुत्ते आकर बैठते। उस दिन बुढ़िया को शायद बुखार था। पानी और वर्षा के कारण ठंड बढ़ गई थी और शेड के चारों ओर हवा के थपेड़े टक्कर मार रहे थे। बुढ़िया गुदड़ी में लिपटी हुई पड़ी थी और लड़का अपना घुटना उससे टिकाये दोनों हाथों से सिर थाम कर बैठा था। रात के दस बज रहे थे और उधर दो-चार आवारा पशुओं, पानी में भीगे कुत्तों के अलावा कोई नहीं था। शेड का ऊपर वाला हिस्सा भिखारियों से भरता जा रहा था।

'मोत्या आज भी तांगा नहीं लाया।' लड़का अपने आप ही बुदबुदाया। उसके हाथ एक बार फिर गुदड़ी में लिपटी गठड़ी बनी बुढ़िया पर जा टिके।

बुढ़िया ने बड़े कष्ट के साथ मुंह खोला और उसकी निगाह लड़के से फिसलती हुई उसकी बगल में खड़े कुत्ते पर टिक गई। कुत्ता पानी में भीगा था। भीगने से उसके शरीर के बालो के गुच्छे बन गये थे जिनसे पानी चू रहा था और रेला बनकर बुढ़िया की गुदड़ी तक आ रहा था। उसकी देह से भयंकर बदबू आ रही थी।

'दुर ·····।' बुढ़िया ने धीरे से ही कुत्ते को दुतकारा। लड़के की बात शायद उसने नही सुनी थी। वह कुत्ते पर निगाह टिकाये कांपते हाथों से कुछ टटोलती रही। अचानक ही उसके हाथ में लड़के का हाथ आ गया। लड़के का हाथ ठण्डा था और उसकी सारी देह हवा मे हिलते सूखे पत्ते की तरह कांप रही थी। दुतकारने पर कुत्ते ने अपनी पूंछ हिलाई और पिछले पैरों के सहारे वहीं बैठ गया।

'तुझे ठंड लग रही है ?' बुढ़िया ने चिंतित होते हुए लड़के से प्रश्न किया। अंधेरे कोने मे उसका प्रश्न एक गर्म सांस के साथ शेड में दुबक गया और लड़का उसके और पास खिसक आया। अबकी बार बुढ़िया ने लड़के की सारी देह हाथ से टटोल डाली। लड़के का सिर पानी में भीगा था और उसकी गीली कमीज से पानी टपक रहा था। यह कमीज किसी रेलवे पेटमेन की थी जो तार-तार होने के कारण फेंक दी गई थी और जिसे बुढ़िया लड़के के लिए उठा लायी थी।

'तू कहां भीग आया ?'

'तेरे लिए गया था, मोत्या की तलाश करने। बीड़ी भी नही थी।'

'फिर ?'

'मोत्या का तांगा आज भी नहीं आया। घास वैसी ही पड़ी है।' उन दोनो को बीड़ी की आदत थी। दो दिन से लगातार बारिश होने के कारण वे कहीं नही जा पा रहे थे। वैसे रोजाना सुबह वे घास काटने जाते थे। दिन भर घास काटने और शाम को घास का गट्ठर लेकर तांगा स्टेण्ड पर आ जाते। मोत्या उनका स्थायी ग्राहक था। जब-तक उससे पेशगी भी ले आते थे।

बुढ़िया ने एक आख से कोने मे एक ओर ढेर हुई घास की ओर देखा। सचमुच घास वैसी ही पड़ी थी। घास से रिसते पानी से वहां की जमीन गीली हो गई थी। पानी का एक छोटा-सा रेला धीमी गति से चलता हुआ लड़के की ओर आ रहा था।

'जीजी।' लड़के ने अपना मुँह खोला। वह मा को इसी नाम से पुकारता था। लड़के के आवाज़ देने पर बुढ़िया कुछ नहीं बोली। उसने अपनी दोनों अध-मुंदी आँखें लड़के की देह पर टिका दीं।

'अभी गोपाल इधर आया था।'

'तुझे कैसे मालूम हुआ।'

'यहाँ खड़ा हो गया और मुझसे पैसे माँगने लगा। लड़के ने अपनी बात समाप्त कर खीसें निपोर दी और हँसने की कोशिश की। लेकिन गोपाल का नाम सुनकर बुढ़िया के भीतर जैसे बारूद सुलग उठी हो। वह भीतर ही भीतर कुढ़ गयी और उसने एक भद्दी-सी गाली हवा में फेंक दी। बाद में उसने अपने छार छार हुए घाघरे के नेफे को टटोला। थोड़े बहुत पैसे जो घास बेचने से जोड़े गये थे, बुढ़िया के पास सुरक्षित थे। अभी भी बुढ़िया को महसूस हुआ, जैसे शराब का एक तीखा भभका उसके मुँह के पास आकर ठहर गया हो।

'वह हरामजादा इधर क्यों आता है।' बुढ़िया अंधेरे में देखती हुई बड़बड़ायी। गोपाल उसका सबसे बड़ा लड़का था जो लोको में काम करता था। उसकी बहू ने अंधे देवर और बुढ़िया सास को घर से भगा दिया था। बुढ़िया उसके विषय में जरा भी कुछ सुनने को तैयार नहीं होती। गोपाल और उसकी बहू दोनों से उसे नफरत थी। इसी कारण बात को बदलती हुई वह बोली—'
'मोत्या शायद बीमार हो। पिछली बार जब मिला था तो कह रहा था कि पेट में दर्द है।'

'पेट में दर्द तो होता रहता है।' लड़के ने इसे बेहद सहज होकर लिया। उसके खुद के पेट में जब-तब दर्द हो जाया करता था और अब वह इसका अभ्यस्त हो गया था।

लड़के से शायद बैठा नहीं जा रहा था। उसने एक बार अपने भीगे बालों को सहलाया उनका पानी निचोड़ और बुढ़िया का सहारा लेकर लेट गया।

लड़के के पेट में परसों सुबह दर्द था। फिर भी वह दिन भर बुढ़िया के साथ घास काटता रहा था। शाम होते होते बुढ़िया को भयंकर जाड़ा लग आया था और वह जल्दी से आकर गीले और नंगे फर्श पर पड़ गयी थी।

'कोई बाबू-वाबू ही घास लेने आ जाता।' बुढ़िया ने आशान्वित होते हुए कहा। 'मोत्या तो क्या पता, कितने दिनों से आये।'

'हाँ। तू जब सो रही थी तो एक आदमी आया था।'

'कितना दे रहा था।'

'आठ आने।' लड़के ने व्यंग से मुँह टेढ़ा कर कहा।

'सब हरामजादे हैं। तीन रुपये की घास के आठ आने ....।' बुढ़िया ने इस बार दांत पीसे और बाद में लड़के की पीठ पर अंगुलियां फिराने लगी।

'आज तूने कुछ खाया?' उसने लड़के से जानना चाहा।

'क्या खाता? घास।' लड़के ने कहा और वह हंस दिया। हालांकि उसे जोरों की भूख लग रही थी, लेकिन उसे अपनी मां की विवशता ज्ञात थी। बुढ़िया ने घास की ओर देखा— वह अभी भी वैसी ही पड़ी थी। बुढ़िया इस बार खीझ पड़ी।

'उसके सिर पर घास पटक देता। आठ आने ही सही, लेकिन बेच देता। वैसे भी घास बासी थी।'

'क्यों? दिन भर की मेहनत के आठ आने। दो आदमियों की मेहनत कितनी होती है?'

'तू तो पागल है। सब हराम की खाना चाहते हैं। ये नहीं जानते, घुटने घुटने कीचड़-पानी में घास किस तरह काटी जाती है।' बुढ़िया ने कहा और चुप हो गई।

शेड के पश्चिमी सिरे से शोर उभरता आ रहा था। कुछ गायें तेजी से इधर भागती आ रही थीं।

'जल्दी से लेट जा। वरना कोई पुलिस वाला आएगा और भगाने लगेगा। इस बरसात में कहां जाएंगे।' बुढ़िया ने अपनी देह को गुदड़ी से लपेट लिया और आधी गुदड़ी लड़के के ऊपर डाल दी। लड़का झटपट जमीन पर पसर गया और सांस रोक कर शोर को पास आता हुआ महसूस करता रहा।

लेकिन वे सिनेमा देखकर लौटते हुए कालोनी के मजदूर थे जो आज को दिनों दिन बढ़ती महँगाई और पे कमीशन की रिपोर्ट पर जोर जोर से बहस कर रहे थे। भीड़ जब उनके पास से गुजर गयी तो बुढ़िया ने लेटे लेटे ही कहा— 'सुन तो।'

लेकिन लड़के ने उसकी बात शायद नहीं सुनी। उसने अपना मुँह खोला

और बुढ़िया के पास अपना मुंह ले जाकर बोला— 'अब की सर्दियों में मैं अंगरखी बनवाऊंगा।'

उसे शायद ठंड लग रही थी। लेकिन बुढ़िया ने उसकी बात नहीं सुनी और अपनी ही बात जारी रखी— 'मेरे पैरों में सूजन आ गई है। कपड़ों में जुएं पड़ गयी हैं।'

'जुओं का क्या। जुएं तो मेरे भी पड़ रही हैं। लेकिन पैरों की सूजन खराब रहती है।'

'मुझे तेरी फिकर है। मेरे मरने के बाद तेरा क्या होगा?' बुढ़िया के स्वर में दर्द था। उसकी आंखें शायद भीग आई थी। लड़का यह सब नहीं जान सका। लेकिन बुढ़िया की बात से समझ गया कि वह रोने लगी है। वह उसके नजदीक खिसक आया और बुढ़िया के हाथ को अपनी आंखों पर फिराता हुआ बोला— 'रोती क्यों है? तेरे बाद मैं भी मर जाऊंगा।'

इस पर बुढ़िया कुछ नहीं बोली। उसने समझ लिया कि लड़के की आवाज़ कांप रही है। बुढ़िया के हाथ में अभी तक लड़के का हाथ था। लड़के की देह सचमुच कांप रही थी।

'तुझे भी ठंड लग रही है?' बुढ़िया ने द्रवित होते हुए थोड़ी देर बाद पूछा।

'हां। जोरों की।' लड़के ने धीरे से ही कह दिया।

'मरा तुझे भी बुखार आएगा।' बुढ़िया फुसफुसायी। उसके सूजे हुए पैरों में रात सरकने के साथ साथ दर्द बढ़ता जा रहा था। वह अभी शेड के बाहर गिरते हुए पानी की बूंदों को देख रही थी। बारिश के साथ हवा तेज हो गई थी और उसके थपेड़े उन दोनों को झिंझोड़ रहे थे। लड़का उसी तरह कांप रहा था और गठड़ी बना हुआ शेड के खंभे की जड़ में घुसता जा रहा था।

अचानक ही खंभे से चिपका हुआ एक बड़ा-सा पोस्टर उनके पास आ गिरा। बुढ़िया ने उसे देखा और अपनी आंखें लड़के पर टिका दीं। धीरे से ही उसने लड़के की देह को छुआ। लड़के को जोरों से बुखार चढ़ आया था। ठंड के कारण लड़के की देह दुहरी हुई जा रही थी।

उसने विवशता के साथ अपने आस पास देखा। लड़के को उठाने लायक उसके पास कुछ भी नहीं था। एक क्षण के लिए वह कसमसायी और धीरे धीरे

उधर घिसटने लगी, जहाँ पोस्टर आकर पड़ा था। उसने पोस्टर का मोटा कागज उठा लिया और उसी तरह घिसटती हुई लड़के तक चली आई।

'कैसा जी है, बेटा?' उसने लड़के के माथे को सहलाते हुए पूछा।

'मुझे ठंड लग रही है।' लड़का चीखते हुए बोला।

बुढिया कुछ नही बोली और पोस्टर वाले मोटे कागज से लड़के की देह ढंकने लगी। देह ढंकते समय उसने एक पल के लिए पोस्टर को देखा–गरीबी हटाये जाने वाला पोस्टर का कागज फर्श के पानी से भीग गया था और लड़के की देह ढकने के प्रयास मे टुकड़े–टुकडे हो गया था। कागज के ऊपर बाद मे बुढ़िया ने अपनी गीली गुदड़ी डाल दी और वह लड़के की देह थपथपाने लगी।

लडका कुछ बड़बड़ा रहा था और बुढिया खुद का दर्द भूली हुई कांपते हाथों से उसकी देह सहला रही थी। □ □

सूरज कब निकलेगा

□

स्वयं प्रकाश

सूरज कब निकलेगा

भैंराराम झोंपड़ी से बाहर आ गया।

आसमान में घिरे घटाटोप बादलों में कहीं कोई तिरेड तक नहीं पड़ी थी। भिमिर-भिमिर बरसात चालू ही थी पर इसे बन्द ही समझो। और बन्द भी कैसा ? जैसे कोई आपको जमीन पर पटककर आपके ऊपर चढ़ बैठने के बाद दो पल सांस लेने के वास्ते रुक जाये। उफ !

भैंराराम ने कान खड़े किये। कहीं से किसी पक्षी तक की कोई आवाज नहीं। कानों पर ठंडे और कर्कश थपेड़े मारती सिर्फ एक ही आवाज . नदी के पानी की हरहराहट। बालू टूटकर गिरते समय भी आवाज नहीं करती। आहिस्ता आहिस्ता कटती जाती है। एकदम पता नहीं चलता कितनी जमीन कम हो गयी। यह भैंराराम का नया अनुभव है।

झुरझुरी-सी महसूस हुई। फिर अन्दर आ गया। फर्श पर कीचड़ ही कीचड़ है। सुगनी दोनो टाबरों को गोद में लिये किनारे पड़े माचे पर गुमसुम बैठी है। कुतूहल का भाव बच्चों की आँखों से कभी का गायब हो चुका है। अब वहां एक आतंक है, और कुछ नहीं। उधर देखने से भैंराराम बेचैन हो जाता है। और फिर बाहर झांक आता है। अन्दर-बाहर के अलावा अभी और किया भी क्या जा सकता है ?

उसने अन्दाजा लगाया कि शाम हो गयी होगी। फिर बाहर आया। खतरा सामने था। उसका झूपा अपेक्षाकृत ऊंची जमीन पर है, पर नदी का पानी मुश्किल से तीन बास रह गया है। रात तक जरूर उसका झूपा बह जाएगा। जिन्दगी का पहिया बस समझो कि किनोर पर भाग रहा है, कभी भी उतर जाएगा। नहीं, ऐसे कैसे काम चलेगा। कुछ तो करना ही पड़ेगा। काश ! वह सुबह ही निकल भागता। कल-परसों ही चला जाता। या कम से कम लुगाई-टावर को छोड़ आता। लेकिन सुगनी की बात उसने नहीं मानी। लुगाई की अक्कल ! आखिर ठाकर-सा का नमक खाया है उसने। ऐसे वक्त

खडीना छोड कर भाग जाये ? और जब कि ठाकर सा होठ दबाकर मुस्कराते हुए उसे ललकार चुके हो— क्यो रे भैंरा ? कुछ मर्दपना बाकी है या नहीं ? पीठ दिखाकर भाग तो नही जायेगा ? लेकिन अब ? सुगनी की बात .. लेकिन उसे क्या पता था कि पानी रुकने की बजाय बढ़ता ही जाएगा और चारो तरफ़ से उसे घेरकर निकल भागने की गुंजाइश ही ख़त्म कर देगा ! उसके बाप ने नहीं देखा कभी इतना पानी ! खैर, जो हो गया उसे छोड़ो। अब क्या करना है यह सोचो।

भैंराराम ने अपनी गिरस्ती दुनिया के तामझाम पर नजर दौड़ायी। पानी से मोर्चा लेना है तो अपनी ताकत तो तौल ले। नही, डरने की कोई बात नही। अभी बहुत कुछ है। यह टूटी घुरियो वाला गाड़ा है। वह मजबूत मूज की रस्सी है। यह पक्की जड़ों वाला गोदी का पेड़ है। भूँपा न भी सही अभी बहुत कुछ है।

उसके बदन मे फुर्ती आ गयी। मन को जैसे किसी ने डंक मार दिया। धोती मोडकर कमर में खोंसी और खड़े गाड़े को धम्म से पटक्कर खींचता-खांचता पेड तक ले आया। टाबर भागकर बाहर आ गये। सुगनी अन्दर से बोल पड़ी— काऊं करो हो हम्में ! ! यानी अब क्या करने लग गये ? यानी इतनी मुसीबत से मन नही भरा क्या। यानी वही लुगाई की अक्कल ! खैर, उस पर बाद मे झुंझला लेगा। अभी फुर्सत नही है। मुस्कुराया। उसका जीव भी बड़ा मजेदार आदमी है।

पेड और ऊंची जगह पर था। तने के बिल्कुल पहलू में अड़ाकर उसने गाड़ा छोड़ दिया और भागकर रस्सा ले आया। तब बड़े इत्मीनान से एक-एक गांठ को जांच-जांच कर पूरा रस्सा खर्च करते हुए गाड़ा पेड़ के तने से बांध दिया। अब कहा जाएगा साला ! दो हाथ ! यहां तक आयेगा पानी ? अन्दर गया और खटिया उठाकर ले आया। खटिया को गाड़े पर रख दिया। उस पर घर भर के गाभे-गूदड़े लाकर डाल दिये और ऊपर टाबरों को चढा दिया। उन्हें तो मजा आ गया। पानी थम चुका था। यह रात की तैयारी थी। चारों प्राणी इसी तरह रात भर खटिया पर बैठे रहेंगे। बीड़ी-पानी-भूख-नींद का नाम मत लेना। सुबह देखेंगे क्या हालत रहती है।

नही चाहते हुए भी दीठ खेतो की तरफ़ गयी और पसर गयी। सब उजड़ गया। सारा बरबाद हो गया ! जैसे किसी ने दाल का सीरा मूह तक लाकर हटा लिया हो और जबड़ो मे धोचा ठूंस दिया हो ! भैंराराम उदास हो गया,

आसपास के सारे खड्डों में भरा काला-मटमैला पानी उसे मनहूसियत से भर गया ! सब चले गये। कुछ धर्मशालाओं में पड़े हैं। कुछ शहर जाकर हम्माली करने लगे हैं। कुछ को अब भी उम्मीद है ! कितनी उम्मीदों से लोग आये थे। पानी की खबर सुनते ही कैसे टूट-टूटकर लोग अपनी घर-जमीन सम्हालने लौट आये थे। कैसी आबादी हो गयी थी ! और वह गोम्या भावी का लड़का ? कहता था, अहमदाबाद में हथठेला चलाकर आया हूँ। पतलून पहनता था और हिन्दी बोलता था। साला ! कहता था एक मिल मे चर्खी भी चलायी बदली में। कुछ दिन और रहता तो पक्की में नाम आ जाता– पर नहीं भाई, घर घर होता है। ऐसी आज़ादी वहां कहां पड़ी है ? वहां तो बस भागो-लाओ-खाओ, भागो-लाओ-खाओ ! कहा गया होगा गोम्या भावी का लड़का ? और दूसरे सब ? और वह भी क्यों नहीं चला गया सबके साथ ? कैसा लगता होगा अहमदाबाद में ?.... बाजरी के ठूंठ पीले मुरझाए हुए और जले हुए. झुंड के झुंड.. पानी में खड़े हैं बेदम, पर जो टूट नहीं सके। भगवान ! भगवान कितना क्रूर है ! !

○ ○ ○ बीसियों साल बाद मुलक मारवाड़ मे ऐसा पानी बरसा है। बाजरी की इकलौती फ़सल लहलहा उठी है। मिट्टे फूटने लगे हैं। मन की उमंग आसमान छू रही है। कभी नहीं देखा उसने ऐसा जमाना। इस बार अपनी जमीन लेगा। सुगनी के लिए असल चांदी के दो-चार दागीने करवाएगा। बस अब खुल जाये ! बरसा और बरसा.... और बरसा। बाजरी सिर से ऊपर निकल गयी। देता है जब छप्पर फाड़कर ही देता है। देर है पर अंधेर नहीं। भैंराराम को लोगों की ये बातें सच-सी लगीं। वह शहर जाकर आया। सब जगह यही आलम था। किसान के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। ट्रक खड़ी कर दो खेत में ! मजाल है किसी को नजर आ जाये ! कहो जो हार जायें ! खूब . लेकिन और बरसा। हंसी थम गयी। थिरक रेत मे धंसने लगी। मुस्कान सिमट गयी। नहीं, अब और नहीं चाहिए। अब धूप चाहिए। दाणा पड़ेगा कब ? दाणा पकेगा कब ? इस चारे का हम क्या करेंगे अगर धूप नहीं मिली ? धूप... धूप.... ! वह फिर शहर गया। सब जगह यही हाल है। सबकी निगाहें ऊपर उठी हैं। सबकी भौंहों पर बल पड़ना शुरू हो गये है। सबने उंगलियां ऊंची कर दी हैं। सबकी आंखों की चमक आशंका का जल छूकर छन्न छन्न बुझने लगी हैं।

फिर और बरसा....और बरसा.... और सब मटियामेट हो गया। जो

भी है वह, यह सब करने वाला... या तो राकस है या मूर्ख ! साले को इतना पता नहीं कि अब हमें धूप चाहिये, पानी नहीं ? नहीं देगा तो प्यासा मार डालेगा, देगा तो नाक पकड़कर पानी में गरदन दाब देगा। पर अब क्या कहें ! कोई आदमी होता तो बीस-पच्चीस गाव के लोग भेले होकर जाते, समझाते-बुझाते, पैर मे पोतिये डाल देते, लेकिन भगवान ! उसे किसने देखा ? उसने तो लिख दी क़िस्मत और सो गया।

भरी-पूरी फ़सल का तबाह हो जाना किसान के लिए बेटे की मौत से छोटा गम नहीं होता !

तब वह आखरी बार शहर गया था। आटा लेने। और उसे वहा कोई ऐसा मिनख नही मिला था जिससे अपना सुख-दुख पूछा-बताया जा सके। ठाकर सा बाहर गये हुए थे। संगी-बेली पता नही कहां चले गये थे। शहरातियों की और भी समस्याएं थी। पतलूनों में कीचड लग रहा था। बसें-गाड़िया अस्त-व्यस्त हो रही थीं। कच्चे मकान धप-धप गिर रहे थे और चर्चा का विषय बन रहे थे। ठेकेदारों की दारू का मोल देश उन ढहे-गिरे पुलो, टूटी सडकों से चुका रहा था जहा राख और गोबर के साथ इन्सानियत को भी धर दबाया गया था। शहरानी इसी इन्सानियत को रो रहे थे। रोनेवालो मे पी. डब्ल्यू. डी. के ओवर-सियर भी शामिल थे। अखबार-डाक वगैरह बन्द होने से दफ्तरों पर मुर्दनी छायी हुई थी। ऊबे हुए लोग दारू पी रहे थे, भजन-कीर्तन के कार्यक्रम कर रहे थे, या ताश खेल रहे थे। उन्हे आकाशवाणी दिन मे कुछ खास बार तबाही के समाचार सुना-सुनाकर प्रमुदित और उत्तेजित कर रही थी।

ऐसे में भंवराराम की बात कौन सुनता ? एक भाईजी थे उसकी जान-पहचान के, जो दीपक वाला झंडा अपने घर पर टागे रखते थे और हर आने-जाने वाले का स्वागत लवर छाप बीडी से किया करते थे—वे अपनी मंडली के साथ बाढ पीडितो की सहायतार्थ सास्कृतिक कार्यक्रम की तैयारियो में अभी से ही व्यस्त हो गये थे। जैसे कोई बीमार को देखते ही क्रिया करम की तैयारिया करने लगे। बाकी कौन था ? कोई नही। चुनाव के दिन भी नही थे जो कोई भंवराराम का दुखड़ा सुनने लायक समय निकाल लेता। हताश भंवराराम जैसे अकेले गया था वैसे ही अकेला लौट आया। लौट आया और घिर गया।

आस अंधी काया नही छोड़ती। शायद पानी रुक जाये। शायद धूप निकल जाये। शायद ज़मीन सूख जाये। शायद फिर बीज डाला जा सके। शायद भुखमरी से बचा जा सकने लायक पैदा हो जाये। शायद महाजन की देहरी पर

मत्था रगड़ने से बचा जा सके। शायद सुगनी को फैमीन मजूरी में न भेजना पड़े। शायद ....

उफ ! बारिश फिर शुरू हो गयी।

घटाटोप अंधेरा। पता नहीं सूरज कहां मर गया। नदी का वेग तेज है। पानी फैल रहा है। जाने रात तक कहां पहुंचे। क्या खा जाये, क्या छोड़े !

० ० ० फटी तिरपाल में दुबके-चिपटे वे चारों भीगते-भीगते भी ऊँघ लिए। नींद अपना धरम नहीं छोड़ती। अचानक भैंराराम को ऐसा लगा जैसे कोई कुत्ता बिल्कुल उसकी खाट के नीचे चप्-चप् पानी पी रहा है। या जैसे कुत्ते एक नहीं अनेक है। फिर लगा जैसे जमीकंप जैसा कुछ उसने अभी-अभी महसूस किया है। हड़बड़ा कर भैंराराम ने तिरपाल से सर निकाला और गरम हो चले शरीर पर बौछारों की ठंडी मार का अनुभव किया। अपनी स्थिति का चेत होने में भी उसे कुछ पल लग गये। अरे ! अच्छा ! हां ! वह गाड़े पर जमी खटिया पर है। पेड़ सलामत है। पर वे कुत्ते ? कुत्ते कहां गये ? अचानक भैंराराम को सब कुछ समझ में आ गया और वह धम्म से कूद पड़ा। कूदा था जमीन समझ कर, पैर पड़े पानी में ! छपाक की आवाज हुई। सुगनी भी जाग पड़ी। अच्छा तो पानी यहां तक आ गया ? पांव घसीटते हुए गाड़े के पीछे की बाजू गया और रस्सी का इत्मीनान किया कि हां पेड़ से बंधी हुई है। कुछ जान में जान आयी। वापस आकर गाड़े पर बैठ गया। बीड़ी की याद आयी। अब कहां पड़ी है बीड़ी ! आखरी बीड़ी उसने आज सुबह पी डाली थी। ठुड्डा जरूर घर के किसी कोने-कचुले में.... ...पर वहां तो पानी भरा होगा। छोड़ो !

पानी तेज हो गया। तिरछी बौछार ने तिरपाल के नीचे के बिछावन को भी भिगोना शुरू कर दिया। अचानक बिजली चमकी। आसपास का सबकुछ पल भर को उजागर होकर बुझ गया। लेकिन कैसा था वह एक पल ? भैंराराम की शुतरमुर्गी सुरक्षा पर ठठाकर उसकी सारी सूझ का मखौल उड़ा गया। वह एक पल। चारों ओर जल ही जल पानी का समदर। तेज बहता-डराता-चकराता-उफनता-शोर मचाता पानी का परलय ... और बीच में कमजोर नन्हा टापू .. जिस पर घिरे बैठे ये चार नन्हे जीव....जैसे अपने-अपने में मनु या नूह के अभिनय का पूर्वाभ्यास कर रहे हों। अब वातावरण शोर से भर गया था। बादलों की गड़गड़ाहट, बौछारों की तड़तड़ाहट, पानी की हरहराहट। कहीं किसी कटती जमीन से पानी में आते-गिरने की आवाजें और बीच-बीच में किसी किसी पेड़

के टूट कर गिरने की आर्त भर्राहट ? भैंराराम का दिल बैठने लगा । हाथ-पैर कापने लगे । आंखें बिल्ली हो गयी । मन भगवान,भगवान रटने लगा । अगर गाड़ा उलट जाये तो ? अगर रस्सा टूट जाये तो ? अगर जमीन धसक जाये तो ? अगर हम सब अलग-अलग बह जायें तो ? कुशंकाओ से दिल भर उठा । उसे लगा वह थपेडो पे बेकाबू बहा जा रहा है । सुगनी दूर पानी में डूब उतरा रही है । बच्चे बापू-बापू चीख रहे हैं । पर वह रुक नही पा रहा है । रुक सकता ही नही । उन तक पहुच सकता ही नही । पानी प्रबल वेग से उसे आगे की तरफ़ धकेले जा रहा है । नहो सुबह हो गयी है चारो तरफ़ धूप खिली हुई है । पानी उतर चुका है । वह किनारे की एक चट्टान पर खड़ा है । सामने सुगनी की लाश पड़ी है । क्षत-विक्षत कपड़े फ़टे हुए, जाल और सिवार हाथ-पाव मे उलझे हुए चेहरा पानी के जानवरो द्वारा नोचा-खाया हुआ मांस फूला हुआ.... हड्डिया जगह-जगह से झाकती हुई और सारी देह भयंकर दुर्गन्ध मारती हुई....। नही !! वह घबरा गया । कांखो मे पसीना महसूस करने लगा और घबराकर सुगनी से लिपट गया । बच्चों को टटोला । कैसे निश्चिन्त सो रहे हैं ।

सुबह कब होगी ? सूरज कब निकलेगा ??

अचानक आकाश मे तेज गड़गड़ाहट हुई और बिजली फिर चमकी । पहिये पूरे डूब चुके थे । बच्चे सो रहे थे । सुगनी के हाथ उसकी गरदन टटोल रहे थे ।

—डर लग रहा है ? ""घबराते क्यों हो ? मर ही जायेंगे न ? या और कुछ ? साथ मरेंगे तो सात जनम मैं तुमसे ही ब्याह करूँगी । अंधेरे में बिल्कुल पास सुगनी की कापती आवाज सुनाई दी । उसका रोम-रोम सिहर गया । लुगाई ? सुगनी !!

—सुगनी, तुझे और बच्चों को कुछ न हो बस । मैं बाबा रामदेव पीर को नयी चादर चढाऊंगा । इक्यावन रुपये का परसाद चढाऊंगा । नाक रगड़ता हुआ उनके दरबार तक जाऊँगा । सारी जिन्दगी उनके गीत गाऊंगा"' मैं ...

लुगाई दो पल चुप रही, फिर बोली—मैं बताऊं ? कुछ नही होगा । हिम्मत रखो । इसी समय दो बार जोर से बिजली चमकी । पानी का प्रवाह बहुत तेज था । जैसे उधर कोई बाध-बंधा टूट गया हो । सिचाई विभाग के दूरदर्शी इंजीनियरो ने उधर कच्चे बदे बाध रखे हैं । सीमित वर्षा जल को रोकने और उपयोगी जमीन में फैलाने के लिए । पानी बन्द होने के बाद इस तरफ की उथली पर लम्बी-चौड़ी नदी की जमीन में लोगो ने खेत बना लिये । पर उन्होंने अपनी

उमर में कभी उस नदी को चलते हुए तक नहीं देखा था, पूर की तो बात ही छोड़ो। अब थोड़ा-सा पाट बदल गया है तो कहो भैराराम का परिवार ज़िन्दा है, वरना तो ''''''पर अब इतना सारा पानी एक साथ आ रहा है तो उसका यही मतलब है कि ज़रूर छोट्योड़ा बन्दा टूट गया है।

बादल फिर गरजने लगे। बारिश तेज हो गयी। सांय-सांय करती हुई, तूफानी ठंडी हवा भी बहने लगी। अचानक गाड़ा हचमचाया''' और ज़रा-सा घूमकर एक फुट आगे चला गया....फिर पीछे आ गया और घूमने लगा। दोनों बच्चे हड़बड़ा कर जाग गये और डर के मारे चीखने लगे। भैराराम ने हाथ झुकाकर देखना चाहा कि पानी कहां तक पहुँचा है, पर उसकी उम्मीद से बहुत ही ऊपर उसके हाथ ने पानी छू लिया। पानी गाड़े की सतह तक पहुंच गया था....यानी गाड़ा अब लगभग तैर रहा था। खटिया कभी भी गिर-ढह-सरक या बह सकती थी। दोनों ने एक एक बच्चा गोद में उठा लिया और सोचने लगे कि क्या किया जाये? बच्चों की डरी हुई चीख-पुकार ने उन्हें और ज्यादा घबरा दिया था। वे कभी ऊपर आसमान की तरफ देखते, कभी एक-दूसरे की तरफ। दोनों जगह कोई उम्मीद नज़र नहीं आती। यह तय था कि अब इस खटिया पर बैठे रहना अकलमंदी नहीं है, तत्काल कोई और आश्रय लेना चाहिए-लेकिन कौनसा और आश्रय?

अचानक भैराराम को चेत हुआ कि यह गोंदी का मज़बूत पेड़ साला कब काम आयेगा? वह पुलक उठा, और हालांकि यह भी खतरे से खाली नहीं था, क्योंकि एक तो टिक पाने और काफी देर टिके रह सकने लायक जगह उस अंधेरे में खोज पाना, दूसरे बच्चों का साथ और तीसरे सांपों का डर। पर तब भी वह खटिया के मुकाबले निश्चित रूप से ज्यादा भरोसे का आसरा था।

यह तजवीज भैराराम ने सुगनी को बतायी। उसे बात जँची। दोनों खड़े हुए। पहले खुद चढ़ा। एक जगह तलाशी। पहले सोचा खटिया उठा कर किसी तरह यहां डगालो में फांस फूस ले तो बच्चे तो आराम से बैठ ही जायेंगे। फिर लगा यह इस अंधेरे में संभव नहीं है। आँखें बहुत मुस्तैदी से काम कर रही थीं हालांकि। हाथ भी। एक बच्चे को ऊपर लिया, फिर दूसरे को, फिर सुगनी ऊपर आ गयी।

चारों चुप थे। डर के मारे। ऊपर से पानी का तेज बहाव चारों तरफ घेराव अपेक्षया साफ़ दिखाई दे रहा था। अब बिजली चमकती थी तो पानी में कुछ छोटी-बड़ी चीजें तैरती-डूबती नज़र आती थीं। किसी भेड़-बकरी की

फूली हुई लाश, कोई फूस का चक्कर खाता हुआ छप्पर, कभी कुछ और समझ मे नही आने वाली चीजें।

फिर पता नही क्या हुआ कि एकदम छोटा बच्चा जोर से चीखा और दहाड़े मार-मार कर रोने लगा। वे दोनों घबरा गये। छोटा बच्चा सुगनी की गोद मे था। उसकी देखा-देखी बड़ा बच्चा भी रोने लगा और उसने भैंराराम की गरदन मे अपनी बाहें इस बुरी तरह कस लीं कि भैंराराम को सांस लेने मे भी तकलीफ होने लगी। लुगाई रूलाई की कगार पर पहुँच गयी थी। बच्चा कुछ बता नही रहा था, बस रोये जा रहा था। भैंराराम ने बुरी तरह झूंझल महसूस की। लगा सब सालों को नीचे पानी मे धक्का दे दे और फिर खुद भी कूद पड़े। पर डाटने मारने या धक्का देने का मौका नही था। जो था, बरदाश्त तो करना ही था। लाचारी मे उसे भी रूलाई फूटने लगी। हिम्मत साथ छोड़ने लगी। बच्चे के पैर मे किसी ने काट लिया था। जब यह बात पता चली दोनों धणी-लुगाई सन्न रह गये। दिल की धड़कन जैसे रुक गयी। क्या सांप? और कौन हो सकता है?

बारिश अब टूटकर बरस रही थी और पानी जैसे जादू के जोर से बढ़ता जा रहा था। बच्चा रोते-रोते चुप हुआ और ऐसा लगा जैसे उस पर मूर्छा आ रही है कि लुगाई ने रोना शुरू कर दिया। अब भैंराराम उसे धीरज बंधा रहा था और अपनी जान की कसमें दे-देकर, अपनी मोहब्बत के वास्ते दे-देकर उससे हिम्मत रखने को गिड़गिड़ा रहा था। इधर बच्चे को किसी तरह जगाये रखने की कोशिश चल रही थी उधर भैंराराम के देखते ही देखते उसकी खटिया मय कपड़ो-लत्तो के चक्कर खाती और गोते लगाती तेजी से बह चली और दो ही पल,मे आंखो से ओझल हो गयी।

सूरज!! सूरज कब निकलेगा??

दोनों ने ऊंची आवाज में भगवान को पुकारना शुरू कर दिया और इसके कुछ देर बाद भैंराराम ने भगवान को धमकियां देना चालू कर दिया। यही भैंराराम जो कुछ देर पहले तक भगवान को तरह-तरह के लालच देना चाह रहा था, अब उसे धमकियां दे रहा था और धमकियां ही नही, बुरी-बुरी गालियां भी दे रहा था— और सुगनी इसका जरा भी विरोध नहीं कर रही थी।

अन्त मे वे भगवान से मौत मांगने लगे। चारो की तत्काल मौत।

मगर हुआ यह कि बिजली और जोर से चमकी, पानी और तेजी से ऊपर चढ़ा, बारिश और बेरहमी से बरसी, बादल और बेदिली से गरजे, लाशें

और खौफ़नाक तरीके से बह-बहकर आयी और सुगनी-भैराराम के दिल और ज़ोर-ज़ोर से धड़के।

पर इतने पर ही उनकी तकलीफों का अन्त नही था।

अन्त में एक तीखी और डरावनी चर्राहट-गुर्राहट के साथ पेड़ भी गिर गया।

पेड़ हिला, पेड़ कांपा, पेड की जडें उखड़ीं-टूटी.... और पेड़ गिर गया। भैराराम और सुगनी ने ज़िन्दगी मे कभी इतनी सख्ती से कुछ नही पकड़ा होगा जितनी सख्ती से इस समय एक हाथ से पेड़ की डाल, दूसरे से बच्चों को छाती से चिपटाकर उन्होने पकड़ा-भींचा-गड़ गये-एक हो गये। और उन्हे आश्चर्य हुआ कि पेड़ के पानी मे गिर पड़ने के बाद भी वे चारों सलामत थे, जिन्दा थे। क्योंकि पेड़ जमीन पर नही, मोड पर गिरा था जो पानी मे डूब गया था पर बहा नही था। अब वे पानी की सतह पर लटके हुए, बच्चो को थामे हुए.... ज़िन्दा थे.... और यह ज़िन्दगी मौत से भी बदतर थी. .. मौत का भी कलेजा दहला देने वाली थी। इसका एक-एक पल बेइंतिहा तवील और दहशतज़दा था। इसके बाद वे दोनों निरंतर भगवान को गालियां बकते रहे और उससे अपने और अपने बच्चो के लिए मौत मागते रहे.. और सुबह की प्रतीक्षा करते रहे। लुगाई सुगनी को चक्कर आ रहे थे, जी मितला रहा था, एक-दो बार उसने उल्टी भी की . . पर वह मरी नहीं और उसने बच्चे को भी नही छोड़ा। घोर निराशा, हताशा और आसन्न मृत्यु के जबड़ों मे फंसे हुए भी यदि वे जिन्दा थे तो सिर्फ इसलिए कि मन के बहुत भीतर उन्हे पक्का भरोसा था कि भगवान चाहे या न चाहे, वे तब तक झेल पायें या न झेल पायें, जिन्दा रह सकें या नहीं.. सूरज ज़रूर निकलेगा।

और सूरज ज़रूर निकला।

० ० ० दोस्तो, आगे की कहानी मैं नही सुनाऊंगा। उसमे दु:ख-तकलीफ़-निराशा भूख-भाग्यहीनता और लाचारी के अलावा कुछ नही है। और उसका वर्णन करने में मैं भैराराम और सुगनी के साथ न्याय भी नही कर पाऊंगा। एक कहानीकार एक भैराराम की पीडा का, एक सुगनी के दर्द का, महज एक छोटा सा हिस्सा ही अभिव्यक्त कर सकता है। कहिए एक सौवा हिस्सा। या शायद वह भी नही।

अपने यहां प्रकृति की पूजा की गयी है, उसकी नाक मे नकेल नही डाली

गयी है। अपने भैंराराम का छोटा बच्चा दूसरे दिन दोपहर बाद मर गया। तीसरे दिन उन लोगों को हेलीकॉप्टर से निकाला गया। उसके बाद पुनर्वास की लंबी यातना उन्हें सहनी पड़ी। भैंराराम जिसका हाली था, उस ठाकुर ने भी कोई ख़ास मदद नहीं की, उल्टे डांटा कि साला उल्लू पहले क्यों नहीं चला आया, वहीं क्यों फंसा रहा ! मूरख ! और उसी तरह उसे बहुत कुछ सहना पड़ा।

सूरज निकल गया था। कुछ और उससे हुआ हो या नहीं हुआ हो-एक अंधकार जरूर उससे कट गया था। मैं तब से अब तक भैंराराम को देख रहा हूँ" देखता आ रहा हूँ . आदतन भगवान का नाम ले ले ये और बात है, पर उसे अब किसी भगवान-बगवान का भरोसा नहीं रहा। □ □

हवा में अकेले

□

मणिमधुकर

हवा में अकेले

एक कठिन चुप्पी में सब कुछ निरीह ढंग से शांत था। हवा सामने की थी और सिर के बालों को खड़ा करती हुई पीछे धकेल रही थी, पर एक दहशत से भरा उनींदापन हमें जबरन आगे की तरफ घसीट रहा था। आगे कुछ नहीं था– मिट्टी के पोले ढूहों पर टिके हुए एक कमजोर आकाश के सिवा।

थकान से पांव लंगड़ाने लगे थे। सीधी धूप शरीर के खुले हिस्सों में गुदने खोद रही थी आह। मैंने एक जलती सांस बाहर फेंकी और गर्दन की खाल में चुभते हुए कांटों को सहलाने लगा। होंठ बिलकुल खुश्क हो गये थे। एक निर्जीव सतह उन पर सख्ती से उभर आयी थी। जीभ के चिपचिपे थूक से मैंने उस सतह को तर किया। पपड़ी पर जमे रेतकणों का स्वाद मुंह में फैल गया। किरकिराहट दांतों में बजने लगा, जैसे अचानक कोई तार टूट गया है और सारंगी की कातरता में फँसी हुई धुन विचलित हो उठी है। फिर ... फिर वह किसी दुर्बल पीड़ा-स्वर की तरह थरथराती हुई मेरे खून में घुल गई और बेहोश होने लगी . क्या यह मुक्ति का क्षण है? मेरी आंखों में तरल-सा कुछ तैर आया।

—कितनी दूर है?

जोना का स्वर सूखे, उदास पत्तों की गूंज बनकर ऊपर उठा; क्षण भर बाद जाने किस गड्ढे में गिरकर गुम हो गया।

वह हांफ रही थी। उसके छोटे-छोटे नथुने अधीरता से फड़क रहे थे। फूला हुआ पेट गठरी की तरह घुटनों पर झुक आया था और वह उसे संभाल नहीं पा रही थी।

—ज्यादा दूर नहीं। एक डेढ़ कोस और... बस।

बूढ़े दुबो ने फुसफुसाकर कहा। वह तीन बार कैंप आ चुका था, इसलिए उसके बारे में ठीक-ठीक जानकारी रखता था।

—क्या वहा बहुत से लोग हैं ?

मैंने दुवो की तरफ देखा। उसकी बगलों से पसीना चू रहा था। कुर्ती पर गीली पट्टिया बन गई थी।

हा करीब छह सात सौ। दुवो ने कहा और माथे पर लटक आयी चिथड़ा-सी टोपी को सिर मे धंसाने लगा– लेकिन तुम फिकर मत करो ... वे तुम्हें जरूर रख लेंगे। उन्हे पढ़े-लिखे लोगों की जरूरत है, हिसाब वगैरह देखने के लिए।

—और मुझे भी भर्ती कर लेंगे न ?

जोना ने बेचैनी से पूछा। चील की भाति पख फड़फड़ाती हुई हवा उसकी ओढनी मे घुस गई थी। एक फूलदार छाता उसके पूरे कधों पर लहरा रहा था। वह शर्म से लाल पड़ती हुई उस छाते को पकड़ने की कोशिश कर रही थी।

दुवो चुपचाप चल रहा था। मैं उसके दमाग्रस्त फेफड़ो की उखड़ी हुई आवाज साफ-साफ सुन सकता था। हर सास मानो एक फासला तय कर रही थी और अपने अतिम सिरे पर मोमबत्ती की लौ की तरह कांपने लगती थी। मैंने उस लौ की आच को महसूस किया। एक निष्कलुष मद्धिम लौ। अपने आयुहीन ससार को बार-बार दुहराती हुई।

—तुमने बताया नही, वे मुझे रख लेंगे ?

जोना ने फिर सवाल किया तो बूढ़ा हड़बड़ा उठा। उसकी दाढी अनिश्चित ढग से इधर-उधर हिली और धुंधले शीशे की तरह चमकने लगी। उस शीशे के पार दुवो का चेहरा पके फोड़े की भाति पिलपिला दिखाई देने लगा।

—जोना, वे तुम्हें रख लेंगे।

मैंने एक कठिन क्षण को सहते हुए कहा। मुझे स्वयं अपनी आवाज अविश्वसनीय और दूर से आती हुई लग रही थी।

—तुम माँ बनने वाली हो.... वे तुम्हारी हालत पर जरूर रहम करेंगे।

दुवो ने अस्थिरता से हाथ मलते हुए कहा। वह उस अदृश्य चीज़ को पकड़ना चाहता था, जो उसकी गिरफ्त से छूटती जा रही थी। जेब से मटमैले कागज की पुड़िया निकालकर उसने बायी ओर देखा। एक नंगा पेड़ कुल्हाड़े की

तरह तनकर खड़ा था और उसके तने में कोई लंबी चोंच-वाला पाखी छेद कर रहा था। नसवार अंगुली पर लगाकर दुबो ने नाक में चढ़ाई, फिर भौंहें ऐंठता हुआ छींकने की कोशिश करने लगा। छींक आते ही उसकी दाढ़ी गंदगी से सन गई। वह उसे खींच-नोचकर साफ करने लगा।

धूप सेंकने लगी थी और उसमें फीकापन आ गया था। चींटियों की एक कतार बहुत सधे हुए ढंग से कवायद करती रास्ते के पार जा रही थी।

—मैं फौज में जाना चाहता था।— सहसा रंगा का ऊबड़-खाबड़ स्वर सुनाई दिया। उसका पुता हुआ चेहरा मुंहासों और कीलों से स्याह नजर आ रहा था— चला जाता तो इतने कष्ट नहीं देखने पड़ते लेकिन इसने नहीं जाने दिया।— उसने जोना की तरफ इशारा किया।

हवा धमके मार रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे वह टीलों में गहरे सुराख करती हुई चल रही है।

—मैं जानती थी कि तुम ज्यादा दिन फौज में नहीं रह सकते और मौका मिलते ही वहां से भागने की सोचोगे।

जोना के शब्दों में तीखा आरोप था, मानो वह अपने पति की नस नस को पहचानती हो।

—तुम्हारा भेजा खराब है। तुम हमेशा इसी तरह की बातें करती हो।

रंगा गुस्से में जलता हुआ हिनहिनाया और चुभती निगाह से जोना को घूरने लगा। उसकी ठुड्डी के घाव का निशान एकदम सुर्ख और चौड़ा हो आया था। वह उसे लापरवाही से सहलाने लगा।

—तुम डरपोक हो।, पिछले साल जब पट्टे का झगड़ा हुआ था, तुम बाड़े में जाकर छुप गये थे। ऐसा आदमी फौजी नहीं बन सकता।

जोना के पीले होठों पर कड़वी मुस्कराहट थी। रेत में फंस कर उसकी चप्पलें छप-छप कर रही थी, मानो वह कीचड़ पानी में चल रही हो।

—बेवकूफ औरत।

रंगा बड़बड़ाया। जुकाम के मरीज की तरह उसकी आवाज भारी और बेडौल थी। वह गाल पर चिपकी हुई एक सफेद फुंसी को फोड़ने लगा।

मैं खाली-खाली सा हो गया। बेतरतीब ढंग से मुझे वे दिन याद आने लगे, जब मैं जोधपुर की एक कचहरी के सामने चटाई बिछाकर पुरानी पत्रिकाएं बेचा करता था। नाई की दूकान तक जाने के लिए पैसे नहीं होते थे, इसलिए महीनों हजामत नहीं बनवाता था वह शुरू सर्दियों की ओर थी। कटे हुए बालों वाली एक सुन्दर स्त्री आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखती मेरे पास आयी। उसने 'वुमन एण्ड होम' का कोई बासी अंक खरीदा। जब तक वह खड़ी रही, मैं उसके पांवों की कच्ची, लाल अंगुलियों को देखता रहा। वे भूरे रंग के स्लीपरों में जैसे सो रही थीं। स्त्री की बगल में एक सात-आठ मास का बच्चा था। मम्मी, इसकी शक्ल अब्राहम लिंकन से मिलती है।

स्त्री ने मुड़कर एक मीठे विस्मय से मुझे देखा और हँस पड़ी। जाने कितनी देर तक उसकी हँसी मेरे रक्त में गूंजती रही।

जोना हँस रही थी। एक रोएँदार हँसी। मेरे शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गई। दुबो कह रहा था—बड़ी लड़ाकू औरत हो तुम। रंगा की बजाय तुम्हें फ़ौज में भर्ती होना चाहिए था।

जीना . लगातार जीना और अपने को जिंदा महसूस करना कितना मुश्किल है। एक बोझिल उच्छ्वास के संग कुछ लफ्ज मेरे भीतर प्यासे हिरनों की भांति उछले और किन्हीं कंटीली झाड़ियों में गायब हो गये। मुझे लगा, मैं अपने प्रति दया दिखाता रहा हूं . ..अपने प्रति नहीं, अपने शरीर के एक व्यर्थ हिस्से के प्रति। वह हिस्सा कौन सा है ? क्या उसे देखा जा सकता है ? कितना वेदनामय होता है वह क्षण जब किसी को अचानक यह पता लगता है कि उसका शरीर एक धूसर पहचान में खो गया है और वह खुद उसमें एक पराये आदमी की तरह रह रहा है—उसका सांस लेना भी 'निजी' नहीं है। जो कुछ व्यक्तिगत है, वह इच्छाओं के ताप से परे....मृत्यु का अनुभव क्या इस यातना से अलग होता है ?

रेत की स्वच्छता और निष्प्राणता मुझमें भर गई। लगा जैसे मैं जमीन के अन्दर चल रहा हूं। एक अभेद्य सन्नाटे से घिरा। दुबो, रंगा और जोना के दुखों को सूखे गोश्त के टुकड़ों की तरह मुंह में क्यों चबा रहा हूं ?

जोना मेरे साथ चल रही थी। शाम के अधमरे उजाले में उसका चेहरा नारियल सा लटक आया था। मुझे उसकी मुस्कान छीलने लगी।

—कुछ नहीं। मैंने हकलाहट पर कठिनाई से काबू पाते हुए कहा—मुंह में रेत भर गई है।

तुमने कहीं नौकरी की है ?

उसने अंगूठे को इस तरह गले पर रगड़ा जैसे वह साबुन की बट्टी हो। मैल की एक लट छूटकर नीचे गिर पड़ी।

—जोधपुर में मैंने एक प्राइवेट कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया था। यह तीन साल पहले की बात है।

—तुमने शहर क्यों छोड़ दिया ?

—वहां बमबारी हो रही थी।

—क्यों ?

पाकिस्तान से लड़ाई चल रही थी न। दुश्मन के हवाई जहाज रात को गोले गिराते थे। काफी नुक्सान हुआ।

—तो तुम डर कर गांव भाग आये ?

जोना ने हँसते हुए अपने बालों को थपथपाया।

मैं झेंप गया। लेकिन, वह जो कुछ कह रही थी—सच कह रही थी। डरकर ही मैं सैकड़ों मील दूर भाग आया था। इस अथाह रेगिस्तान में। कुछ दिन मैंने एक स्कूल चलाने की कोशिश की, पर असफल रहा। चार साल से अकाल पड़ा हुआ था। एक मुर्तैली छाया सब ओर डोल रही थी। अन्न और पानी के सिवा किसी को किसी चीज की खोज नहीं थी। इस बार हालत और भी बदतर हो गई थी, गांव खाली पड़ा था। तालाब सूखकर कुरियों से भर गया था। शेष रह गये लोग जाने किसका इन्तजार कर रहे थे ? एक भयावह अंत धीरे-धीरे 'शक्ल' ग्रहण कर रहा था। दरवाजों पर उसी की दबी दबी आहटें सुनाई पड़ती थीं। कभी कभी सरकारी गाड़ी मामूली अनाज पानी बांटने आती थी। इसलिए जब दुबे ने कैम्प खुलने की खबर दी, तो राहत का सा एहसास हुआ। कैम्प गांव से आठ मील दूर था और वहां सड़क बन रही थी।

—अगर उन्होंने आज हमें नहीं लिया तो ?

रंगा ने शुष्क स्वर में कहा। वह शंकित था।

—तो क्या ? हम फिर आयेंगे। काम पाने के लिए चक्कर तो लगाने ही पड़ते हैं।

जोना ने तल्खी से जवाब दिया। उसके दांतों में एक तिनका फंसा था। वह उसे कुतर रही थी।

दुबो की आवाज उबल रही थी। शायद वह कुछ तय कर चुका था।
मैं सिहर गया। रगो मे बुखार की सी लहर उठी।
नही आने से क्या होगा ?

रंगा ने मजाक बनाते हुए कहा। उसका निचला होंठ उसके चेहरे की वक्रता से अलग होकर भद्दे ढग से झूल रहा था।

कुछ नही होगा। मैं सिर्फ इन्तजार करूँगा . ....मौत का। मुझसे अब बर्दाश्त नही होता, काफी बूढा हो गया हूँ।

दुबो का चेहरा निर्विकार और साफ था। एक ठहराव, एक झभक में टिका हुआ।

जोना ने घबराकर मेरी ओर देखा। वह दुबो के कथन को झुठलाना चाहती थी। लेकिन.... एक कातर लघुता से उसकी आँखें छलछला आयी। वह मुँह मोड़कर रंगा की तरफ झुक गई।

दुबो खामोशी से आगे बढ रहा था। काठ के पुतले की तरह दोनों हाथो को पीठ पर बांधे हुए।

—जोना, उधर देखो, कैम्प के तंबू दिखलाई दे रहे हैं।

रंगा ने उत्साहित होकर कहा। जोना की आँखें हल्के आश्चर्य और खुशी से फैल गई। आखो के नीचे नामालूम से धब्बे थे। धब्बो पर सूरज का अंतिम उजास झिलमिला रहा था।

दुबो किसी जिद्दी बच्चे की तरह अपनी सूखी अगुली चूस रहा था। जबड़ो के साथ उसके गुच्छेदार कान भी हरकत कर रहे थे। वह जैसे कोई दुस्वप्न देखता हुआ बोला— मैंने तीन रोज से कुछ नही खाया।

सुनकर भी उसकी आवाज किसी ने नही सुनी.... वह आवाज नही थी। निर्धूम अग्नि थी, जो सबके भीतर निरतर जल रही थी।

कैंप मे अच्छी खासी भीड़ थी। एक अधेड़ व्यक्ति जिसकी पैंट घुटनों पर से फटी हुई थी, लाइन लगाओ की हाक लगा रहा था और काफी देर बाद मुंशी आया। उसने मोटे फ्रेम का चश्मा लगा रखा था और बार-बार नाक सिकोड़कर ऊपर देखता था। उसने आते ही भीड़ पर सरसरी निगाह डाली, फिर हाथ खड़े कर अपना कुर्ता उत्तर दिया।

—कितनी उमस है।

कहकर उसने मूडे पर कुर्त्ता फेंक दिया और तीन टांग वाली मेज पर झुककर रजिस्टर उलटने-पुलटने लगा। उसकी बनियान जगह-जगह से पीली पड़ चुकी थी और झरोखा बनने जा रही थी। वह संजीदगी से सबके नाम लिखने लगा। उसके चेहरे पर अस्पष्ट सा कोमल भाव था, जिसमें एक क्षीण मुस्कराहट दरार सी झांक रही थी। माथे पर बारीक और घनी शिकनें उभरती तो लगता, जैसे वह कोई जाल रच रहा है।

—एक सौ बत्तीस

उसने गिनती करने के बाद जोर से कहा और पर्चियां बनाने लगा।

वह ढेले के नीचे दबी पर्चियों में से एक को खींचता, (कभी-कभी उसे इस क्रिया में अंगुली पर थूक भी लगाना पडता) और पेंसिल की नोक पर जोर देकर खाली खाने भरने लगता था।

आज सब ले लिये जायेंगे। इंतजाम हो गया है।

मुंशी की इस घोषणा से भीड़ में सनसनी फैल गई। मुरझाते हुए चेहरों पर से भाप का उफान उठा और हवा में घुल गया। कितनी ही आवाजें एक साथ बहने लगीं— लहरों की तरह परस्पर उलझती हुई। सब में पर्चियां बांट दी गईं।

—तुम स्टोर की देखभाल करोगे। कोई चीज इधर-उधर न होने पाये, अच्छी तरह निगरानी रखना।

मैंने सिर हिलाया।

सड़क बनाने वाले काम पर से लौट रहे थे। वह उनके पास चला गया और चिल्ला-चिल्ला कर बोलने लगा।

शाम चीख पुकारों के ढेर पर से गुजरकर काली पड़ चुकी थी। हवा करारी थी और मुट्ठियां भर भरकर अंधेरा फेंक रही थी। रंगा चार जनों के हिस्से का दाखिला डिपो से लेकर आया। मैं चूल्हे के पत्थर जमा रहा था।

—जोना कहां है ?

रंगा ने आजू-बाजू देखते हुए पूछा। मैदान में स्त्री पुरुष का मेला लगा हुआ था। सब खाने पकाने में मशगूल थे।

—लकड़ियां बटोरने गई है।

मैंने अंगडाई लेकर वदन को झटकते हुए कहा ।

—तुम नहीं जा सकते थे लकड़ियाँ लाने ? उसक
है । मैं सकोच मे डूब गया । रगा के स्वर में नफरत छलक
उपस्थिति काटने लगी ।

तभी जोना प्रकट हुई. अंधेरे का एक दायरा तोड़क
निगाह उसके पेट पर गई । वह औंधे घड़े की तरह आंधो प
जोना उसकी तरफ से बेपरवाह थी । वह चूल्हे के पास अ
एकदम आगे आ गया मुझे उसका फैलाव एक खौफनाक
लगा । मैंने आँखें मूंद ली ।

रात को अचानक नींद खुली तो मैंने अपने को
पाया । सन्नाटे की राख झर रही थी । मुर्दों की तरह लोग
थे । युद्ध के मैदान का सा दृश्य था । बचकाना और दूषित ।

मेरी कनपटियो मे खून की सुरसुरी तेज हो उठी
क्रोध की तरह जन्म ले रहा था ... यह क्या है ? मैंने अप
हाथ को लपेटकर टागो के बीच दबा लिया । कुछ पलो के लि
ने मुझे ढक लिया । झींगुर कही बोल, बोल रहा था । जल्दी
की सी आवाज क्या वह जीवित है, वह अभिमान ? तंद्रा
अस्तित्व की एक नीरव उलझन मे शामिल हो रहा था । वह
थी और हर चीज को खत्म कर रही थी ।

—अभी नही यहाँ नही ।

मैंने सुना, यह जोना की मुलायम आवाज ।
देखा, रगा का चौकोर चेहरा जोना पर झुका हुआ था । मैंने
देर बाद जोना और रगा उठे । बिखरी हुई लाशो की
ओट में गुम हो गये ।

तारो भरा आसमान अपने की तरह झूल रहा था
को अकेले सतोष मे मुस्कराते हुए अपलक देखा जा सक
मिलकर हवा के झोंके को ढो रहे थे । एक बच्चा कुनमुना
नीचे चुप हो गया ।

हख् हख् . बदबू का एक रेला मुझ तक आ
उठ बैठा । बूढा दुबो के कर रहा था । मैंने उछलकर उसके

तबीयत ठीक नही
रही थी । मुझे अपनी

ई । सबसे पहले मेरी
टिका हुआ था, पर
ाकर बैठ गई । पेट
वातावरण की तरह

पत्थर की तरह ठोस
बेखबर होकर सो रह

एक गुलथुल कंपन
त होकर सोचा और
ए मेरे लघु इत्मीनान
जल्दी पलकें झपकने
से मुँदा हुआ मैं अपने
लपटों की तरह लाल

। सिर घुमाकर
आँखें फेर ली । थोड़ी
घसते हुए वे टीले की

उसके अनन्त सुख
ता था । कुछ खर्राटे
। फिर थपकियों के

या और मैं चौंक कर
धे पकड़े । वह बुरी

तरह कांप रहा था। जितना दलिया उसने खाया था, वह बाहर आ पड़ा था। मैं अपने को घिनाने से नहीं रोक सका, पर मैंने होंठ कस लिये और हथेली से दुवो का मुंह पोंछने लगा। एक दानेदार चिपचिपा पदार्थ उसकी दाढ़ी में फंस गया था।

पानी लाने के लिए मैं ज्यों ही पीपे के पास गया, दुवो ने दुबारा उल्टी की और जमीन पर चित्त पड़ गया। मैं दौड़ा। वह अचेत था। नब्ज का कुछ पता नहीं चल रहा था। मैंने हताशा में पुकारा दुवो ..

—इसकी आंत फट चुकी है। यहां कई लोग इस बीमारी में मर चुके हैं।

वह कैंप का चौकीदार था। उसके हाथ में पीतल के तारों वाली लाठी थी और वह उससे ठक-ठक रहा था।

दुवो का शरीर बिलकुल अकड़ गया। फिर वह बर्फ के डले की मानिंद ठंडा हो गया। उसके मुंह से हरे नीले झाग छूटे और रेंगने लगे। चौकीदार ने दुवो का माथा छुआ— यह तो गया। इसे उठाकर अलग रख दो, सुबह जला देंगे। मैं मुंशी जी को खबर किये देता हूं।

वह चला गया। उसकी कठोर पदचाप मेरे और दुवो के बीच धुंधली होती चली गई। दुर्गंध से मेरे नथुने सुलग रहे थे। पांवों की तरफ से खींचकर मैंने दुवो को दूर हटाया और गंदगी को मिट्टी से पूरने लगा।

तब जोना आयी, उसके पीछे-पीछे रंगा।

—क्या हुआ ?

रंगा ने पूछा। उसकी आवाज में खीज भरा खिंचाव था।

—दुवो मर गया है।

—सचमुच ?

जोना ने विहुंककर कहा। फिर वह दुवो के नजदीक खड़ी होकर उसे घूरने लगी।

—सो जाओ। तड़के जल्दी उठना होगा। कैंप का मामला है।

रंगा ने जमुहाई में ऊंघते हुए कहा। जोना दबे पैरों उसके पास आकर लेट गई।

मेरे हाथ कुहनियों तक गंदे हो गये थे। कपड़ों पर भी धूल के गीले

दाग थे। उन्हें धोने के लिए मैं पानी की टंकी की तरफ चल दिया। पीछे से मुझे जोना की सिसकियां सुनाई दीं।

अंधेरे की गाढ़ी दीवार को तोड़कर चलता हुआ मैं अपने आपको पिशाच लग रहा था। एक फफोला मेरे भीतर जोर से फटा और फैल गया। वह एक पिशाच की खोखली हंसी थी। उस वक्त उसे रोक पाना मेरे लिए कठिन था। हवा किनारे खड़े तंबुओं में घुमड रही थी। मैं अपनी लोलुप हंसी को हथेली से पोंछकर आश्वस्त हो गया। □ □